शिक्षक-दिवस 1973

खिलखिलाता गुलमोहर

संपादक :

शिवरतन थानवी

पुरुषोत्तमलाल तिवारी

राजस्थान प्रकाशन

त्रिपोलिया बाजार, जयपुर-2

प्रकाशक
जे. एस. गुप्ता
राजस्थान प्रकाशन
त्रिपोलिया बाजार
जयपुर-२

○

शिक्षा विभाग, राजस्थान के लिए
शिक्षक दिवस (५ सितम्बर ७३)
के अवसर पर प्रकाशित

आवरण :
सुशील सक्सेना

○

वर्ष : १९७३

मूल्य : छह रुपये बीस पैसे मात्र

मुद्रक :
मॉडर्न प्रिन्टर्स
गोधों का रास्ता,
जयपुर-३

आमुख

राष्ट्र-निर्माण के कार्यों में शिक्षक की भूमिका निर्विवाद है। समाज शिक्षक के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करने की दृष्टि से प्रति वर्ष शिक्षक-दिवस का आयोजन करता है।

शिक्षा विभाग, राजस्थान इस अवसर पर शिक्षकों का सम्मान कर उन्हें राज्य स्तर पर पुरस्कृत करता है और उनके कार्यकारी जीवन के सृजनशील क्षणों को संकलनों के रूप में प्रकाशित करता है।

इन संकलनों में शिक्षकों की क्रियाशील अनुभूतियाँ, साहित्य-सर्जना के अखिल भारतीय प्रवाह में उनकी संवेदन-शीलता तथा सामाजिक-सांस्कृतिक समसामयिकता के स्वर मुखरित होते हैं और उन्हें यहाँ एकस्थ रूप में देखा और पढ़ा जा सकता है।

सन् १९६७ से विभागीय प्रवर्तन द्वारा सृजनशील शिक्षकों की रचनाओं के प्रकाशन का जो उपक्रम एक संग्रह के प्रकाशन से आरम्भ किया गया था, वह अब प्रति वर्ष पाँच प्रकाशनों की सीमा तक पहुँचा है। प्रसन्नता की बात है कि भारत-भर में इस अनूठी प्रकाशन-योजना का स्वागत हुआ है और उससे सृजनशील शिक्षकों की अभिरुचियों को प्रखरतर होने की प्रेरणा मिली है।

सन् १९७२ तक इस प्रकाशन-क्रम में २२ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और इस माला में इस वर्ष ये पाँच प्रकाशन और सम्मिलित किए जा रहे हैं :

प्राक्कथन

राजस्थान के सृजनरत शिक्षकों की कहानियों का यह पंचम संकलन सुधी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है।

कहानी जीवनाभिव्यक्ति की बहुप्रथित विधा तो है ही, वह दिन प्रति की सांसों को मुखरता देने, जिए जा रहे क्षणों के दुख-दर्द को, सुख-सौज को शब्दों में सचित्र करने का सहज माध्यम भी है।

इस संकलन में जो कहानियाँ आई हैं उनमें जीवनगत विविधता देखी जा सकती है। पीढ़ियों का संघर्ष, विद्यालयीय दायरे और वृहत्तर जीवन की संक्रमणशील प्रस्थितियाँ; बौद्धिक संत्रास तथा भौतिक दुख, टूटते-जुड़ते परिवारों की लड़खड़ाहट; मूल्यों की टकराहट; नये परिवेश में समायोजन खोजते 'पुरानेपन' की लचरता…… ऐसे पक्ष इस संकलन में उभर-उभर कर सामने आएँगे।

रचनाकार अपने बौद्धिक और सामाजिक परिवेश से टूटकर कुछ लिखे यह सोचना अप्रासंगिक होगा। 'अध्यापक' तो फिर प्रतिबद्ध जीव है! उस प्रतिबद्धता के बीच उसकी रचनाओं में 'उन्मुक्तता' की एक सीमा तो रहेगी ही! वह है।

जीवन के मिले-जुले ये स्वर और ये चित्र कितने सम्प्रेषक हैं, कितने अभिप्रेरक और कितने सधे-बधे हैं, इसका निर्णय समीक्षक-जनों को ही सौंपना है!

अपने शिक्षक-लेखकों की प्रतिभा और सृजनशक्ति में संपूर्ण विश्वास के साथ पाठकों की सेवा में,

शिक्षक दिवस, १९७३ — संपादक

अनुक्रम

1

रजनी गन्धा

जयसिंह चौहान

* * *

वीरा ने कोई दो घूँट चाय भी मुश्किल से ली होगी, उसने कप छोड़ दिया। वह कहती गई "मीता! जब मैं तुझे कुछ कहने को होती हूँ, एक अपरिहार्य करुणा तेरे अधरों पर खेलने लगती है। यही कल्पना कर कि मैं सदैव एक ही बात का उद्गम तेरे मन में कुरेदने के लिए उद्यत रहती हूँ। क्या मैं तुझे कुछ कहने का हक नहीं रखती? क्या मेरा कहना-धरना सब तू कसक के रूप में उतारती है? उद्विग्न होकर दहकती जाए, और मैं पानी का छींटा ही न दूँ? कैसे होगा मुझसे यह!

"भागते खरगोश के पिछलग्गू आखेटक की वृत्ति तूने मुझमें कहाँ देखी है? मैं तो यूथचारी बगुले की भांति आत्मीयता के गगन पथ पर एक सीध में तेरी अनुगामिनी होकर विचरण करने को प्रतिबद्ध हूँ।

"इस घटना के पश्चात् तेरी तीन बार की लम्बी बेहोशी ने मुझे कोंचा दिया है, मुझे झकझोर दिया है। अनंत एकाग्रता की थाती बन बैठे रहने से क्या है? प्रच्छन्न अंधकार में डुबकी मत लिए रह। कुछ तो हलकी हो, मेरे कहने से।

"तूने अपने प्रणयाधार आलोक को अपने में सीं रखा है; अपने में समेट रखा है। वह आलोक जो अपनी सुन्दर संहिता के अलभ्य आकलन को ही अस्तव्यस्त कर किसी गन्तव्य कोण का राही बन चुका है। वह आलोक जिसने लम्बी अवधि में निर्मित एक गीले करुणाकान्त चित्र को गरम पानी से धोकर अपनी तूलिका और रंगों को डुबो दिया है, कहीं गहरे समुद्र में, और स्वयं भी शायद किसी लहर के साथ तैरता-उतराता निकल गया है—इतनी दूर जहाँ फिर तट की मुक्ता-प्रसविनी सीपी से मिलाप का वास्ता ही न हो।

"और तेरी उदासीनता अब विवशता से ग्रस्त जीवन के अति अल्प दिनों को गिना गिना कर तोड़ना चाहती है, मरोड़ना चाहती है; और तू टूटा सा तृण होना चाहती है ?

"कल विधा की वेणी से मोगरे की कलियों की गुम्फन टूट गई और गदराई कलियाँ अस्तव्यस्त हो गई आंगन में, तो तूने यही कहा था न मीता कि लक्ष्य की परिपूर्ति के पश्चात् विघटन कोई अमांगलिक संकेत थोड़े ही माना जाता है !

"तू इतना विवेक रख कर भी मौन यंत्रणा और दीर्घ-दाह की भट्टी के सान्निध्य में कैसे बैठी है ? क्षोभ की सुरंग पर पैर जमाए कैसी अनकही उत्पीड़ना भोगती है ? जीवन के खुले-रंध्रों को यों कैसे रौंदना चाहती है ?

"आखिर क्या उपाय है ? मुझसे तो खुल ! हर समय की इतनी घुलन अच्छी नहीं है मीता ! मैं भी घायल-सी, सुधबुध खोई-सी होने लगी हूँ, तेरी दशा पर। इतनी क्या निराशती है ? तू नहीं जानती मीता, कोई ऐसी भ्रमरी भी होती है जो कड़ुवाहट से नहीं अत्यधिक मीठी गन्ध से मरती है !

"आलोक की सहृदयता दिख गई दुनिया को ! उसने एक भीने जीवन को उछाल कर दे मारा है, प्रचंड शिला की नोक पर जो कड़ी धँसन में धँस कर क्रन्दन कर रहा है, कराह रहा है ! किन्तु इसका अर्थ यह तो नहीं होता कि इस करुणालाप को अबाध रूप से बढ़ने ही दिया जाय ! नहीं रोका जाय, जब तक कि वह दम नहीं तोड़ दे !

"मीता सब्र ले ले; उस फूल को सूँघ कर जी ले जिसमें ताजी खुशबू है। इस कम्पन को रोक दे; बहती बयार में थरथराते खजूर के पत्ते का-सा

कम्पन ! रोक दे इस दोलन को; प्रभंजन में पीपल के पत्ते का-सा दोलन !"

संगमरमर पर फेनिल बहाव की भाँति विचारों की फिसलन से मीता भीग उठी। फिर भी मस्तिष्क और श्रवण का सामञ्जस्य इस समय तक नहीं बना पाई वह।

मन ही मन सोचती रही, मोगरे और गुलाब की कलियाँ निःसहाय नहीं हैं। उन्हें सवेरे का भानु अमीय मयूखों का मन-भावना संस्पर्श दे जाता है, उनकी सुषुप्ति को दूर कर जाता है। वे आलोक को देखती हैं; तब तक जीती हैं। भले ही कुछ समय के लिए वे आलोक से बिलगाती हैं।

किन्तु एक ऐसी भी फूलों की बेल है, जो असहाय है ठीक मेरी तरह। उसकी कोमल कलियाँ बेबसी और निरीहता में मेरी सप्तभागिनी हैं। और वे हैं—'रजनीगन्धा'। कितने दुखातप से द्रवीभूत !

बेचारी सन्ध्या के करुणांचल में अपनी मनोव्यथा को लिए मचलकर महकती हैं। दर्द के नासूरों में रस भरती हैं, तरसती हैं, सुलगती हैं और पिछले प्रहर में अपने आप बुझ जाती हैं। अमर आलोक निष्ठुर बन कर उसे सहलाने नहीं आता।

"रजनीगन्धा, मैं भी दुखी हूँ तेरी तरह; तेरा निशिवेला में कन-कन भीगता है, मेरे नयन कोर भीगते हैं। तू दर्द पीकर जीती है, मैं अश्रु पीकर।"

जैसे एक तन्द्रा हट गई। मीता ने अपने को जरा सँभाला। उसी समय बाबू के कमरे में सोई हुई पाँच वर्षीया विभा उठ कर आई, और माँ की गोद में फिर पसर कर सो गई। विभा को फिर नींद लेने लगी। मीता ने देखा कि वह कुछ कच्ची नींद से उठ कर आई है, तो उसे अच्छी नींद लेने देने के लिए पंखे के नीचे सुला कर वह कार्य में व्यस्त हो गई।

"वे कहते थे दुःख को भूलना एक टैक्ट है। वह कैसा टैक्ट और वह दुःख भी कैसा कि जिसको भुलाया जा सके? उनके सामीप्य में मैंने यथेष्ट होकर नहीं समझा; अब समझ भी नहीं सकूँगी।

"पहले शीर्षक निश्चित करना कितना बुरा है? तुम्हारी गति उस कथाकार की तरह है, जो पहले शीर्षक बता कर फिर कथानक को कँटीली कलगियों से घेरता है, झिझकता है, अपने आप में कटता है।

"मैं तुम्हारी कथा की अनजाने हाथ लगी 'वीथिका'; जिसकी गरल छाँह में तुमने दुखान्त कथा निर्मित की। तुम और मैं ही तो इसके पथरीले पात्र हैं! पर तुमने यह क्या किया! नायिका को किन तीक्ष्ण काँटों में बींध दिया? इसलिए, इसी उद्देश्य से तो मेरी अवहेलना नहीं की गई कि तुम्हें इस कथा को दुखान्त करना था। फिर ऐसा करके भी चरमोत्कर्ष कहाँ को पहुँचा है? नहीं सोचा है तुमने!

"तुम्हारी देन, यह विधा! मक्खन-से बाल तुमने धोए, कंघी से केश तुमने सँवारे, अपने साथ खिलाया-पिलाया और सुलाया। आज तीन दिन से तो उत्तप्त ज्वर में इतनी तप उठी है कि उसके तन्त्र ही ढीले पड़ गए हैं"। वह सन्निपात के ज्वर में भी 'पापा' को नहीं भूल पा रही है। उसकी रट लगी हुई है–'पापा-पापा'।

"क्या अब तक जो कुछ हुआ, तुम्हारी ओर से निरपेक्ष भाव से हुआ है? क्या लौकिक वासनाओं की तृप्ति के लिए ही यह कृत्रिम पाणिग्रहण का स्वांग मेरे साथ तुमने रचा था? मैं कहती हूँ, था तो पाणिग्रहण संस्कार न? कौन नकार सकता है, इस बात को? फिर किस अनहोनी घटना के पीछे युग-युग के समुज्ज्वल-जीवन को धूलि-धूसरित करने हेतु तुमने यह पथ अंगीकृत किया है। मैंने तो तुम्हें चिरंतन कामनाओं में रूपान्तरित कर अँगराग किया था; और ऐसी ही अपरिमेय उपलब्धि के रूप में तुमने मुझे स्वीकारा था न। अब दायित्व के निर्वहण में कौनसी प्रेरणा उन्वनित किए देती है तुम्हें?

"तुम्हारी विधा अर्धनिमीलित आँखों में निद्रा से जग कर, चमक कर तुम्हारे फोटो की ओर हाथ फैला देती है और "पापा-पापा" कहती हुई धाराओं में फूट पड़ती है।

"मुझे, इसको इतनी गम्भीर सांत्वना देना नहीं आता जितनी तुम दे सकते हो। मैं तो सिर्फ इतना ही कर पाती हूँ; इतना ही कह पाती हूँ—बेटी! पापा उस कमरे में हैं, पापा इस कमरे में हैं, और जब वह इधर-उधर होती है, तुम्हारा पैंट और कोट हैंगर पर टाँग कर बहाना करती हूँ—'पापाजी आ गए न बिटिया, देखले यह उनका पैण्ट, यह उनका कोट और यह उनका अखबार, जिसे वे पढ़ रहे थे, और अभी-अभी टेबल पर छोड़कर, तथा कपड़े बदल कर तुझे सोई हुई देख कर कुछ समय के लिए बाजार को निकल गये हैं।

अभी लौटते हैं, बेटी ! और जब वह उदासीनता त्याग कर बाजार में ले चलने के लिए व्यग्र हो जाती है तो उसकी दशा देखी नहीं जा सकती ।

"तुम नहीं जान पाए मूक शिशु की पीड़ा, तुम नहीं सुन पाए बिलखती आत्मा की सिसकियाँ ।

"दूध नहीं चाहिए, चाय नहीं चाहिए, लस्सी नहीं चाहिए, इसे चाहिए, पापा । गेंद नहीं चाहिए, गुड़िया नहीं चाहिए इसे चाहिए, पापा । गोली नहीं चाहिए, बिस्किट नहीं चाहिए, चॉकलेट नहीं चाहिए, इसे चाहिए पापा ! हाय पापा ! हाय पापा !"

खिड़की के बाहर सघन धुन्ध, बादल और कोहरा ! मीता ने अपने आप से कहा, "कितना कँटीला वक्त है । प्रकृति की नैसर्गिक सुन्दरता को भी कभी-कभी दर्द लीलने को उद्यत रहता है ।"

उसने इस समय यही तो निश्चय किया था कि वह आगे अब इतना नहीं सोचेगी । सोते-जागते, उठते-बैठते हर समय बस एक ही दायरे में उसके बँधे विचार घूमते रहते हैं । तिल-तिल कसक देते रहते हैं ।

उसकी चिंतनाभ्यस्त अन्तर्दृष्टि इतना विचार करके भी अपने को चुपचाप न रख सकी । उसका वह परिचक्र उसी प्रकार फिर चालू हो गया ।

"वे सिर्फ इतना ही तो चाहते होंगे, यह शादी क्यों हुई ? उनके महत्व को परिगलित करने वाली शादी ! मेरे दोष और उनके दोष को तुला पर तोल कर नहीं देखा है उन्होंने ? कौन भारी पड़ता है ? सिर्फ विधा का निर्णय चाहती हूँ, उनसे मैं । मुझे उनके अलगाव की कसक नहीं । उनके दुराव में विधा क्यों दिखती है हर समय ! यही तो एक प्रश्न पूछना है उन्हें मुझे । उनके धूमिल अस्तित्व का परिशमन करना है मुझे; दो टूक बात करनी है मुझे । नहीं तो अब अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कहना है ।

"इतना-सा और कहना है मुझे उन्हें कि तुम्हारी अभिजात्यता, जिसकी ऊपर उठान जहरीले अभिशापों में से है, किसी अन्य के लिए क्यों अभिशापित होती है ? प्रेमांकुरण को तराशती है ? अमृत-उदय को ग्रसती है ?

"तुम्हारे सम्पर्क में डूबी और डूब कर भी तुम्हारी थाह न ले सकी ! तुमने कदाचित् मेरी थाह नाप कर रतन निकालने की चेष्टा की है ।

क्यों नहीं ? तवारीख में अभिजात्यता पर ऐसी ही कई गहरी कालिखें पुती हुई हैं जिन पर सफेदी के उज्ज्वल आवरण मढ़ कर उन्होंने अपनी ऐबें ढाँप रखी हैं।

"इस अभिजात्यता ने सुन्दर को असुन्दर, भरे को रिक्त, विभव को अकिंचन और जीवन को मृत्यु रूप दिया है।

"तुम्हारी श्रेष्ठता इसी में थी कि तुम किसी अभिजातीय कन्या का वरण कर अपनी कुलीनता का लाभ लूटते! मेरे जीवन को स्पंदित कर, मेरे तन-मन को सहेज कर कहीं ओझल होने की यह चूक कैसे की ? आश्रित को निराश्रित करना शायद अभिजात्यता का धर्म होगा ? फूलों को तोड़ कर पैरों के तले कुचलते जाना अभिजात्यता का अटल अभियान होगा ?

"मुझे व्यथा है जी भर कर इस बात की कि तुम्हारी यह महान वस्तु यहाँ कूड़े-कचरे में कैसे पनप आई ? तुम्हारे स्खलन में तुमको झटका नहीं दिया ? अभिजात्यता इतनी हेय होती है, इतनी विकारी होती है, इतनी कटु होती है, इतनी दुराचारिणी होती है; आज एहसास हो रहा है मुझे इसका!

"तुम्हारी यह अमोघ वस्तु कुछ नहीं केवल भ्रम की गठरी मात्र है। ऐसा भ्रम जिसे एकान्त में पिया जाता है; अंधेरे में साधा जाता है; इंगितों में अंकित किया जाता है और जीवन को मृत्यु का संसार देकर मर्सिया की धुन में जिसे गाया जाता है।

× × × ×

"मीरा, यह क्या हुआ ? यह क्या सुना दिया तूने मुझे! तू क्या कह रही है ? मैं नहीं सुनना चाहता तेरे इन शब्दों को! मेरा मस्तिष्क तैयार नहीं है, ऐसी-वैसी बात सुनने के लिए मेरा हृदय इतना कड़ा कहाँ है कि मैं तेरी इस बात को सुन कर, सहन कर सकूँ। तेरी एक बारगी आवाज ने मेरी लाश जो करदी है!

"मेरी विवा! तेरे लिए मेरा हृदय ईश्वर ने माँ से भी कोमल रचा था न! तू इस कोमल कोख को छोड़ कर कहाँ आश्रय ले चुकी ? क्या यह सही है कि तू इस संसार से खोगई है, और सो गई है भूमि की कठोर कोड़ में। तेरी मम्मी को क्या कह कर विदा लेली मेरी मुन्नी, कि तू पापा से मिलने जारही है! उन्हें खोजने जा रही है! उन्हें मनाने जारही है, उन्हें लिवा लाने जा रही है या फिर अनमने मन की व्यथा मन में ही छिपा

कर बिना खाये-पिये, बिना रोये-हँसे, बिना कुछ कहे-सुने ही सदा-सदा के सम्बन्ध तोड़ कर चली गई !

"चली गई वहाँ कि जहाँ से अब मैं तुझे ढूँढ़ कर नहीं ला सकूँ, चली गई इतनी दूर कि आवाज भी न दे सकूँ, छिप गई ऐसी ओट में कि इन आँखों से अब नहीं देख सकूँ !

"मुझे याद है मेरी बिया ! तू एक बार नाराज होकर उस रात्रि को बाथरूम में जा छिपी तो बहुत ढूँढ़ने के पश्चात वहाँ मिली। मैंने तुझे उठाया और छाती से चिपका लिया। उस समय तूने मेरे सीने पर कान लगा कर मेरी धड़कन तो सुनी होगी ! मेरी बेटी, आज तू नहीं जानती कि वह धड़कन कितनी बढ़ गई है !

"आज भी ऐसा ही होगा मेरी बच्ची ! मैं तुझे खोजने निकलूँगा। पहले उस कमरे में पहुँचूँगा, जिसमें तू अक्सर रहती है, खेलती है, सोती है और खिलोने की पिटारी रखती है। मुझे विश्वास है तू उन खिलौनों के साथ खेलती हुई मुझे दिख जाएगी। मैं छिप कर तेरे समीप आऊँगा, और झुक कर तेरा खेल देखने लगूँगा। इतने अर्से से व्यग्र, तू मुझे देख कर दोनों हाथ फैला कर लपक आएगी मेरे गले में; और तब मैं स्नेह-विभोर तुझे उछालकर अपने सीने से चिपका लूँगा; फिर मौन हो जाऊँगा दो मिनट के वास्ते, एक गहरा सताप संजो कर। शायद उस समय तक मौन रहूँगा जब तक तू मुझे बोलने के लिए बाध्य न कर देगी।

"यदि वहाँ नहीं मिली तो मैं उस चिक को उठा कर देखूँगा, जिसके पीछे छिप कर तू हमें 'हाऊ-हाऊ' कह कर डराया करती है। तू वहाँ तो अवश्य ही मिल जायगी।

"यदि मेरा यह अंदाज भी असफल रहा तो मैं हांफता हुआ दौड़ कर बाथरूम की ओर जाऊँगा। उस समय निःसंदेह मेरी धड़कन की गति के साथ ही मेरे पैर उछल पड़ेंगे। किन्तु इतने विलम्ब के पश्चात् तो मैं बावला हो जाऊँगा न, मेरी चिड़िया ! शायद पैर थक जायेंगे और मैं भूमि पर गिर पड़ूँगा। इस विलम्ब के लिए मैं अपने को तैयार कैसे रखूँगा मेरी लल्ली ?

"किन्तु नहीं नहीं, गिर भी गया तो क्या हुआ ? जमीन पर रेंगता हुआ, घिसटता [illegible] हुआ बाथरूम तक तो किसी तरह आ ही पहुँचूँगा।

"क्योंकि तू अपनी नीली-फ्रॉक में, उसके अगले छोर को मुँह में दबा बाएँ हाथ से पाइप की टोंटी को पकड़े वहीं तो खड़ी मिलेगी मुझे !

"मेरी बेटी, मैं फिर तुझे वहाँ पाकर तन्मय हो जाऊँगा व्यथा भीग उठूँगा, सावन-सा झर जाऊँगा । और मेरी विभा ! इस बार तू भी धोखा दे गई और नहीं मिली, तो मैं क्या करूँगा ? ठण्डा हो जाऊँगा, बर्फ की तरह ? नहीं-नहीं ऐसा नहीं होगा मेरी बेटी, ऐसा नहीं होगा !

"तू हट नहीं सकती वहां से, अपने पापा की प्रतीक्षा में तू वहीं पीली दीवार के सहारे टोंटी पकड़े खड़ी है । तू वहीं खड़ी रहना मेरे कहने से ! मेरा अन्तर उद्वेलित है न बेटी ! तू शायद नहीं जान पा रही है, मैं ठण्डा पड़ता जा रहा हूँ न बेटी ! मेरी धमनियों में खून जमने लगा है !

"देख, बाथरूम का फाटक खोलता हूँ । दिख जाएगी न बेटी ? फफक कर रो उठेगी या चीख मार देगी न मुझे देख कर ?

"मेरी बेटी ! तू चीख मार देगी उस समय तो मैं बेहोश हो जाऊँगा; बाल नोंच डालूँगा और तराश डालूँगा अपने भेजे को चाकू की तेज धार से; शिराओं को छील दूँगा; माथे की धमनियों से खून खाली कर दूँगा । नोच डालूँगा उस मस्तिष्क को जिसमें अभिजात्यता की घिनौनी गन्ध भरी थी । उसे करमकल्ले की तरह काट कर छाँट दूँ, बेकार हूँ" ।

× × × ×

"हैं, क्या कहती है मीरा ?"

हाँ, वे होश-हवाश में नहीं है मीता ! आलोक भैया इस जघन्य कृत्य के लिए बराबर प्रायश्चित की ही बात किये जा रहे हैं ! विभा की मृत्यु ने उन्हें विक्षिप्त-सा कर दिया है । भगवान उन्हें ठीक करेगा ! आज भी तुझे दो घण्टे से होश आया है, जरा दृढ़ता रख । जन्म-मरण, मिलाप-बिछुड़न किसी के हाथ में थोड़े ही है । विभा की मृत्यु आसानी से नहीं भुलाई जा सकती मीता ! पहले तू सब भुला कर आलोक भैया को सांत्वना दे । यदि वे अच्छे नहीं हुए तो क्या होगा ?

तेरी स्थिति को देख कर मैंने उन्हें अपने घर ही रोके रखा है । दारुण दुःख में भी इस समय दृढ़ता रख कर उन्हें सांत्वना देना तेरा कर्तव्य है ।"

× × × ×

टूटी लतिका की तरह समीप जाकर मीता ने माथा जमीन पर टेक कर पड़े हुए आलोक के हाथ को अपने हाथ में ले लिया, और फूट पड़ी—"मेरी विधा ! तेरे पापा तो अब आए हैं न ! तू 'पापा-पापा' करती कहाँ छिप गई ?" धीरा ने बाँहों में भर कर उसे सँभाला ।

इधर आलोक कहता जारहा था—पड़ा-पडा बड़-बड़ा रहा था—"मेरी बिटिया बाथरूम की पीली दीवार के सहारे पाइप की टोंटी पकड़ कर......................"

मीता को एक बार फिर एहसास हुआ; रजनीगन्धा का दुःख भी एक दुःख है। बेचारी कितना दुःख पी कर, कितनी व्यथा झेल कर सुलगती है और रजनी के पिछले प्रहर में अपने आप बुझ जाती है !

2

तीन बजे की धूप

भगवतीलाल व्यास

* * *

उदयपुर सिटी स्टेशन। चेतक एक्सप्रेस छूटने वाली है। यानि सात बजने में मुश्किल से दस-बारह मिनट शेष हैं। डिब्बे में बत्तियाँ नहीं जली हैं पर अँधेरा भी नहीं है। गरमियों में साँझ का सात बजे का समय अँधेरे को सहज ही स्वीकार नहीं करता। बेशक थोड़ी देर में अँधेरा आने वाला है। मगर इससे क्या ? अभी तो स्लीपर कोच में लोग आ रहे हैं और सीटें भरती जा रही हैं। लोग बिस्तरे फैला रहे हैं ताकि रात होने पर वे बिस्तरों पर फैल सकें।

"आपने तीन बजे की धूप देखी है ?"

"हाँ······।"

"बात तो पूरी हो लेने दीजिए······।"

"सॉरी।"

"………… मैं कह रहा था, आपने तीन बजे की धूप देखी है ? साधारण गली-कूचों की नहीं। किसी हरी-भरी वादी की। न जाने क्या ढूँढ़ती हुई, तीन बजे की धूप। बहुत प्यारी लगती है न धूप की उदास और ढूँढ़ती आँखें ? वह वादी में क्या ढूँढ़ती है ? शायद अपना मध्याह्न रूप या रूप मध्याह्न ! धूप के उजले चेहरे पर वादी की निरुत्तर छाया परेशानी में बेझिझक मुख पर लटक आई लट-सी लगती है। शायद हर परेशान खूबसूरती की यही तसवीर हो सकती है। तीन बजे की धूप अभी-अभी स्लीपर से उतरी है। वह प्लेटफार्म पर टहल रही है। 'टहलना' कहना गलत होगा। वह किसी को ढूँढ़ रही है; ढूँढ़ने दो।"

इतना कह कर वर्माजी अखबार पढ़ने लगे थे और मैं लोगों की भीड़ को। एकाएक मेरी दृष्टि प्लेटफॉर्म पर व्यग्रता से चहलकदमी करती 'उस' पर पड़ गई। बिलकुल वर्माजी द्वारा अभी-अभी बयान किए गए हुलियेवाली तीन बजे की धूप। बस देखते ही रहिये। नजर न भरना चाहती है न ठहरना। मगर ट्रेन को वक्त से प्लेटफार्म छोड़ना होता है। ट्रेन सरकने लगी और जल्दी ही वह सब कुछ पीछे छूट गया। डिब्बे में बत्तियाँ जल उठीं पर मेरा मन बुझने लगा।

मुझे बुझता हुआ देख कर वर्माजी ने फिर कुरेदा—

"कहिये, मैंने कुछ गलत तो नहीं कहा था ?"

"नहीं ऽऽऽ ……… मगर ………?"

"बात दरअसल ऐसी है कि इसे देख कर मुझे अपने एक मित्र की याद हो आई थी।"—कह कर वर्माजी फिर चुप हो गए।

वर्माजी से मेरा परिचय अभी दो-तीन दिन पुराना ही है। होटल में मेरे पड़ोस में ठहरे थे। पूरा नाम बताते थे पी. डी. वर्मा; प्रिय दर्शन वर्मा। इन दो-तीन दिनों में जितना उन्हें जान पाया हूँ यही कि बड़ी रसिक तबीयत के आदमी हैं। बातचीत के लहजे में साहित्यिकता का आभास पहली ही भेंट में हो गया था इसलिए पटरी बैठ गई। बातचीत करने का ढंग भी इनका ऐसा है। कहीं भावुकता में बहुत अधिक बह जाएँगे और बोलते ही जाएँगे और कहीं एक-एक शब्द पर इस तरह रुक कर सोचते रहेंगे जैसे बातचीत के धागे उलझ गए हों। ऐसे अवसरों पर मुझे इन धागों को सुलझाने में सहायता करनी पड़ती है।

"कहिये न वर्माजी, आप रुक क्यों गये ?"

चौंकते हुए से जैसे वे किसी स्वप्नलोक से लौट आते हैं—

"मैं अपने मित्र की बात सोच रहा था। अच्छा सा नाम है उसका। मगर जाने दीजिये……।"

"हाँ, अगर आपको कष्ट होता हो तो जाने ही दीजिये…।" मुझे शालीनतावश कहना पड़ता है।

"नहीं, मेरा मतलब नाम से है। मगर…… क्या हर्ज है! उसका नाम है सुधीर के० मिश्रा। इस महिला को देख कर मुझे सुधीर की याद हो आई थी।" वे फिर अखबार पढ़ने लगे थे।

मैं तीन बजे की धूप और सुधीर मिश्रा के बीच खो गया। मेरे लिए दोनों ही अजनबी थे। दो अजनबी किनारों के बीच पुल बनने की स्थिति भयानक है तो सुखद भी कम नहीं है।

वर्माजी ने अखबार अपनी अटैची पर पटक दिया था और खिड़की के बाहर गाढ़े होते अँधेरे में घूरने लगे थे। डिब्बे की रोशनी में मैंने देखा कि उनकी आँखें पनियाई हुई थीं। संभवत: वे अपने मित्र सुधीर के किसी अंतरंग प्रसंग पर सोच रहे थे। अचानक उन्होंने कहना शुरु किया—"मैं सुधीर मिश्र के बारे में आपको बताना चाहता था।"

मैंने अन्यमनस्क-सा संक्षिप्त वाक्य कहा—"बताइये।" "सुधीर अच्छा लड़का है बेहद भावुक और प्रतिभासम्पन्न। वह एक लड़की को चाहता था। उसकी पत्नी को इस "चाहने" का पता था। लेकिन जब चाहना कुछ सीमा से अधिक बढ़ने लगा तो उसकी पत्नी ने उसे धमकी दी कि वह आत्महत्या कर लेगी। सुधीर की मान्यता थी कि आत्महत्या सहज नहीं है और उसकी पत्नी जैसी गावदू औरत हरगिज़ वैसा नहीं कर सकती। सुधीर नियमित रूप से उस लड़की से मिलने लगभग दो सौ किलोमीटर का सफर करके महीने में एक-दो बार आता रहा। और, एक दिन उसकी पत्नी ने उसकी मान्यता को झूठा सिद्ध कर दिया। उस दिन भी वह उस लड़की से मिलने आया हुआ था। शाम को होटल पहुँचने पर उसे अपने मित्र द्वारा पत्नी की आत्महत्या की खबर मिली। मैं जानता हूँ, सुधीर बड़ा अच्छा लड़का है और उसने अपने 'चाहने' में नैतिक सीमाओं को कभी नहीं लांघा जबकि वह हर बार वैसा कर सकता था। संयोग मात्र है कि 'तीन बजे की धूप' से उस लड़की के नाक-नक्श बहुत मिलते हैं।…… पुअर सुधीर! काश……खैर, जाने

दीजिये । अच्छा यह बताइये, इसमें गलती किसकी रही ? सुधीर की, उसकी पत्नी की या लड़की की ?"

मैं इस अप्रत्याशित प्रश्न का भला क्या उत्तर देता ! फिर भी हठात् मुँह से निकल पड़ा—"सुधीर की पत्नी को वैसा नहीं करना चाहिए था ।"

"ओ. के. थैंक यू ।" जरा हेडेक होने लगा है .... अब सोऊँगा ।"

+ + + +

सवेरे जब महीन धूप से मेरी नींद खुली तो मैंने वर्माजी वाली बर्थ खाली पाई । अजमेर पीछे छूट चुका था । अखबार शायद वे भूल गये थे । यों ही मैंने उठा लिया । उसमें से एक गुलाबी कागज़ फर्श पर गिर पड़ा था । तार था सुधीर मिश्रा के नाम । किसी पी. डी. वर्मा का भेजा हुआ । वही पत्नी की आत्महत्या की खबर थी । मैं उस विचित्र सहयात्री के बारे में सोचता रहा । याद करता रहा 'तीन बजे की धूप' का चेहरा । शायद उदयपुर में फिर उससे कहीं भेंट हो जाय तो कुछ और सूत्र हाथ लग सकें ।

3

"काला आकाश"

सावित्री परमार

* * *

मुरारी बाबू की साँस बँधने में नहीं आ रही थी। खाँसी उन्हें दम-मारने की भी फुर्सत नहीं दे रही थी। कलेजे में जैसे धौंकनी चल रही थी। दुनिया भर की अटर-पटर पुड़ियाँ फाँक लीं, लेकिन कौड़ी-भर भी, आराम नहीं आया। मन मार कर दो-चार अंग्रेजी शीशियाँ भी गटक लीं, पर सब बेकार। खाँसी क्या मामूली थी! एकदम बला थी। पेट की आँतें मुँह में आ लगतीं। आँखों के गोलक जैसे नीचे गिरने लगते। पसलियों से लेकर कनपटी तक देही की नसें तान की तरह खिंच जाती थीं। कल सोचा था कि माँ का नुस्खा आजमायें। कहा करती थी कि "खाँसी भी कोई रोग होवै है! हल्की फुल्की भई तो काले नमक के साथ मुलैठी की जड़ और अनार के सूखे छिलके कूट-छान फाँक लो....और जो कहीं थोड़ी जोर-जुल्म की रही तो बड़ी इलाची के डोडे भून-पीस के सहद में घोल चाट लो... बस्स, मजाल जो खाँसी का दुश्मन भी टिक जाय!... बाजार जाकर इलायची लाये। नुकाई भूनकर; चकले पर

उन्हें आश्चर्य हुआ कि माँ का ख्याल क्यों आये जा रहा है कल से ? क्या चीज है जो पेट से उमड़कर गले में अटक कर आँखों को बार-बार गीला कर रही है ! मन में जाने क्या छिल गया है ! जाने कौन चीज एकदम रीत गई है ! कौन सा अबूझा दर्द है जिसे बहलाने के लिये माँ भरे ले रही है अपनी गोदी में, इस बूढ़े बेटे की गली हड्डियों को !

उन्होंने घबराहट-सी महसूस की। दीवार के सहारे तकिया लगाकर अधलेटे-से हो गये। माथा भिन्ना रहा था। छाती को जैसे कोई नुकीले पंजों से खुर्चे डाल रहा था। यह कमरा ! कल तक कितना पराया था लेकिन आज कितना अपना लग रहा है ? अब आखिरी चट्टान पर आकर पश्चाताप हुआ तो क्या हुआ ! काश ! अपने-पराये का भेद पहले ही मालूम हो जाता ! एक हूक सी उनके भीतर उठी। क्या मिला जिन्दगी गला के ! सारी उमर यों ही भागते-दौड़ते फिरे। दुनिया भर का कुनबा जोड़ा। अपने-पराये में कोई फर्क नहीं समझा। जहाँ तक बस चला, सभी के सुख का ध्यान रखा और खुद हमेशा बाहर पड़े रहे। कभी इस गाँव तो कभी उस कस्बे में। कभी बड़ा शहर नसीब नहीं हुआ। दिन भर लड़कों को मेहनत से पढ़ाना। एक वक्त खाना बनाकर दोनों समय खा लेना। इधर साल-छः महीने से शरीर काम नहीं कर रहा था, वो अलग बात थी कि स्कूल के ही किसी चपरासी को कुछ दे दिला कर कच्ची-पक्की रोटियाँ बनवा के खा लेना। क्या आनन्द भोगा उन्होंने जीवन का ? बहुत जी हुलसाया तो कस्बे के मोटर-अड्डे पर चाय की थड़ी पर जा बैठे ! पान-तम्बाकू की लत तो नहीं पाली, हाँ अलबत्ता शौकिया कभी-कभी गाढ़ी चाय जरूर वहाँ मक्खन डलवाकर पी लेते थे। ये जश्न शायद महीने दो महीने में पूरा होता था। फिर वही भाँय-भाँय करता एकाकी महीना। बीमार पड़ जाते तो कोई शिष्य घर से दलिया-खिचड़ी बनवा लाता। बदले में वे उसे जमकर पढ़ा देते। बस...यही रही उनकी दिनचर्या और यहीं बँधा रहा उनसे उनका जीवन !!

बैठे-अधलेटे उनकी कमर में चींटियाँ-सी रेंगने लगी थी। तकिये नीचे सरके से सीधे लेट गये। आँखों के पपोटे धक-से रहे थे। एक थकान उनके ऊपर तर गी। कुछ चैन सा मिला।

विचारों की गाड़ी फिर चल पड़ी। बाहर बच्चों की तालियाँ थी।

से मान, सम्मान से नौकरी की किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया....यह क्या कम इनाम है ? श्रीराम उपाध्याय कहा करते थे ......"क्या मिसिर जी ! यों ही रहे भोले भण्डारी बने ! अरे, कुछ तो आदमी को तेज़तर्रार होना चाहिये ! आप तो सोचते हैं कि 'जग जैसा, जग मोसा'....ज़माने को देख कर चलो । कौन हड्डी तोड़ मेहनत को पूछता है ? कौन देखता है तुम्हारी ईमानदारी को ? कुछ और भी उलटबाँसियाँ चाहिये तरक्की पाने को ! घी निकालने के लिये उँगली टेढ़ी करनी ही पड़ती है ! देख लो, अगर गाँठ में अकल और माथे पर आँख हैं तो भरोसेलाल को देखो...जाने कैसी-कैसी नौंक-गाँठ कस-कस के उछालें मारी हैं कि जो सबसे पीछे था अब सबसे आगे है.... सब जानते हैं उसके करतब....पर कौन मुँह पर कहता ? जलो-मरो....वो तो ठाट से सीढ़ियाँ चढ़े जा रहा है... सो कहता हूँ, कि ज़माने में जीना सीखो मुरारी बाबू !"........... लेकिन उन्होंने अपने उसूल नहीं तोड़े । कभी भी अधिकारों की आड़ लेकर कर्त्तव्यों से मुँह नहीं मोड़ा था । वे तो सदैव गीता के उपासक रहे और कर्मशील कृष्ण के सिद्धान्त को मानते रहे कि कार्य करते रहो, फल की चिन्ता मत करो... कहते रहे भरोसेलाल जैसे जाने कितने....पर वो अडिग रहे, कार्यरत रहे ।

यों ही जोड़-घटा-बाकी करते-करते रिटायर हो गये । बड़ी खुशी हुई कि चलो अब चैन मिलेगा । अपनी नींद सोना, गरम खाना अब नसीब होगा । फिकर भी क्या ! जवान चार बेटे... एक पाँचवा बेटा सगान बुआ का लड़का... वो कौन बेटों से अलग रहा ! मौज ही मौज ! अरे ! खाया कौर और लिया टका क्या कभी भूला जाता है ! देने वाला फिर भी भूल जाये, पर लेने वाला........! कभी नहीं ।

बेलारी पर जाने कौन भूत सवार हुआ कि रटने लग गई—"दुनिया ने घर खड़ा कर लिया पर मैं वही किराये के घोंसलों में दम घोटती रही । जो पैसा मिलेगा वह या कुछ कर्ज लेकर अपना घर बनाओ । आखिरी उमर में ही सही, मन साध तो पूरी कर लें ।"....उसका मन भी उन्होंने कहाँ तोड़ा ! पचीसियों किस्तों में जाकर एक घर खड़ा किया... जिसे घर कहें या नहीं....समझ नहीं पाते आज भी ! कभी ईंटें आईं, कभी चूना, पत्थर उनका लिया । दीवारें खड़ी हुईं तो छत की पट्टियां नहीं आ पाईं । पट्टियां पड़ीं तो छत पर सीमेंट नहीं हो पाई । हर बरसात में दुःख पाने लगे । पलस्तर बिना

कर दो कमरे बिना पलस्तर के बरसों बिना किवाड़ों के रहे। किवाड़ें बनीं तो वो भी आम की लकड़ी की। धूप-पानी लगते ही जिनकी दरारें उन्हीं की गरीबी की तरह चौड़ी हो उठीं। साँकलें, कुन्दे भी कहाँ वक्त पर लगे! आँगन कच्चा ही रहा। न घर गाँव जैसा था और न शहर जैसा। करते भी क्या?

रिटायर होकर जिस सुख की कामना ने उन्हें पागल बना दिया था, वह भी पूरी कहाँ हुई! हरेक चेहरा बुझा-बुझा-सा। सामने आने में जैसे सभी कतराते हों! आँखों में प्रश्नों की सुइयाँ चुभती हुई-सी! दो साल बाद केतकी का दमा बढ़ गया। कोई दवा नहीं लगी। ज्यादा कीमती इलाज करवा नहीं सके। दिन-दिन घुलती गई। उस बेचारी को भी क्या सुख मिला था! वो बाहर पिसते रहे थे, तो वो घर में खटती रही थी। बुआ थीं.... वो रहीं सास के आसन पर और ताई थीं....सो उनका भी हुकुम देने का रिश्ता रहा....बची तो बस यही केतकी, जो हारी-बीमारी की भी परवाह किये बिना जुटी रही अपने-परायों में! उमर भर घूँघट में दबी-घुटी रही। पहले खाँसी....फिर बुखार... और घड़ी भर आराम नहीं... हो गया दमा। जरा उमर बढ़ी तो पोर-पोर का जोड़ गठिया ने जकड़ लिया।... नहीं झेल पाई तो चल बसी....चलो अच्छा ही हुआ, वरना रोती उनकी तरह आज आठ-आठ आँसू!

केतकी के सामने ही बच्चों के आसार उल्टे-सीधे नजर आने लगे थे। कहा तो करती थी वह कि....“तुमने तो अब आ के देखा है... मैं तो गीली लकड़ी-सी भीतर ही भीतर जाने कब से सुलग रही हूँ। आधी उमर पूरी करने पर भी बुआ जी और जीया के सामने बोलने की तो छोड़ो, नजर मिलाने की हिम्मत नहीं पड़ी....पर यहाँ तो न बेटों में लिहाज बाकी रहा और न बहुओं में हया बची। पहले भी कूटने-छानने में लगी रही और अब भी चूल्हा नहीं छूटा....अरे! बहुओं का क्या.! बेटों की फूट गई क्या कि बड़ों की लिहाज-इज्जत क्या होती है!” उनसे कब उत्तर बना इन बातों का! सुनते थे और चुप रह जाते थे। तेज नश्तर में कहाँ पता लगता है कि घाव कहाँ और कितना गहरा लगा, वो तो जब दर्द चिनगता है, तब पता लगता है न!....अब है न, कि हर पल जब घाव टीसता है तो मेहनत.... चिन्ता में काटे एक-एक क्षण याद आते हैं।

केतकी के मरते ही कमर टूट गई । फिर भी सब्र किया कि भरा घर है, चलो सँवर जायेगी अपनी भी काया ।····लेकिन दो वर्ष में तो क्या जादू···सा हुआ कि दो बेटे बाहर तबादला करा बैठे । दो तो पहले से ही बाहर थे कि "कुनबे में रहना भी कोई रहना हुआ ! न मर्जी से चल पाओ, न चैन से रह पाओ"—मदद के नाम पर कुछ भी नहीं देते थे । रहे-सहे ये दो भी चलते बने । यह भी तो नहीं सोचा कि बूढ़ा पिता क्या करेगा ? दो जून रोटी कौन देगा ?

कटौतियों के नक्शे पर बना बेढँगा मकान इस लायक भी नहीं था कि किसी किरायेदार को बसा लिया जाये । साल भर से निपट अकेले रह गये थे । अब तो उन्हें यह भी शंका होने लगी थी कि जैसा भी लिया-दिया मकान है, कहीं इसे भी ये लोग छोड़ेंगे या नहीं क्योंकि बेटों की चाल-ढाल और बात-चीत से कुछ ऐसा ही अन्दाजा उन्हें लग रहा था । दिवाली पर बिचला कह तो रहा था·····"जाने कौन सुख देती है आपने यहाँ अकेले रहने में ! इस मकान को बेच-बाच टंटा काटो और किसी के भी पास चल कर रह लो । हम सब यहीं आ टिकें या वैसी रकम आपके पास भेजें, यह तो बड़ा मुश्किल है··· सम्भव ही नहीं है ।" ···वे उसे देखते ही रह गये थे । कुछ नहीं बोले । चुप ही रह गये थे इस बार भी । कलेजे का घाव और भी टीस उठा था ।

गली-मुहल्ले ने जोर दिया कि जाकर देखो तो सही बेटों के पास । कुछ तो उनका भी राज भुगतो ! इलाज भी हो जायेगा और मन भी बहल जायेगा । सभी को पहले उन्होंने चिट्ठियाँ डालीं । लगे हाथों बुआ के लड़के रतन को भी डाल दी । सभी में लिख दिया कि इलाज कराने और आराम करने आ रहा हूँ····सबसे पहले बड़े का उत्तर आया कि ·····"इधर मौसम पहले ही खराब है । बीमार और पड़ गये तो ! बेकार देही बिगड़ेगी न ! ·······" दूसरे दिन दूसरे बेटे का लिखा मिला कि·····"शीला अस्पताल में भर्ती है । पहले ही परेशान हैं । आपकी सेवा नहीं हो पायेगी । व्यर्थ दुःख पाओगे····" तीसरे ने खबर दी·····"पिताजी ! पे ही नहीं मिली है । आप जो भी रुपये भेज दो तो कुछ काम चले·····!" बुआ के रतन ने खबर दी कि ·····"पेट में दर्द रहता है । चिन्ता न करें, सब कुछ आसान है । आप डाक्टर चड्ढा से ठीक ऑपरेशन क्यों नहीं करा लेते । आपने तो हमेशा उनके बच्चों को यों ही पढ़ाया है, कितना एहसान आपका उन पर ! ·····" सबके अन्त में छोटे ने लिखा कि

एक क्षण के लिये भी अब यहाँ रुकने को जी नहीं चाह रहा था। कैसे उड़कर पहुँचें अपनी उसी एकान्त कोठरी में, जहाँ मूँज की खाट बिना पल्लों वाली खिड़की के पास बिछी होगी। ओह ! भाग्य ने बड़ा धोखा किया ! क्यों आये यहाँ ?····भला उसका उत्तर भी क्या था ! प्रश्न ही उपहास करता-सा लगा। कमाल है ! एक बाप अपने बेटे के पास क्यों आया ! है भला कोई उत्तर ?····फिर !····फिर क्या !····एक सूना रेगिस्तान·· एक हहराती प्यास····सर्वहारा जिन्दगी की एक जीवित लाश···· और····और····कुछ नहीं।

दो दिन हो गये अपने से लड़ते-टूटते !

ओह !····याद करके भी जी दुखी होता है····तेज बुखार में ही घर से चल पड़े थे। क्या करते वहाँ रहकर ! केतकी मेले-तमाशे को, खाने, घूमने, अच्छा पहनने को तरस गई, लेकिन वे हमेशा उसकी तिल-तिल भर इच्छाओं को कर्त्तव्य, मर्यादा और लोकलाज के बोझों से दबाते रहे। एक बार सिनेमा के लिये कितनी जिद्द कर बैठी थी·· "अजी रहने भी दो। चौड़े बार्डर की धोती और गले की मटरमाला को कहते-कहते थक गई, पर तुम्हें तो दुनिया के गड्ढे भरने से फुरसत कहाँ रही। पिछवाड़े की सोना कह रही है कि सनीमा न देखा तो कुछ न देखा। चलो इसे तो दिखा दो·····"····पर ले गये थे क्या उसे ! यहाँ भी शरम-हया आड़े आ गई। सोचा····कोई क्या कहेगा ! लड़के वाले बोले मारेंगे कि बाऊजी को ये क्या मटरगश्ती सूझी····सो केतकी यहाँ भी घाटे में रही।··· उसी केतकी के बेटे-बहू उन्हें बोझ मान रहे हैं··· बच्चे दूर रख जाते हैं इस सड़ी काया से ! वो रतना की बहू क्रिया-कर्म की भी सोचने लगी····अच्छा ही तो हुआ कि वह चली गई जल्दी····वरना माथा पीट लेती।

बुखार में ही चल पड़े थे·······

हमेशा इसी तरह भागे फिरे····पहले दूसरों को सुख देने के लिये···· और अब अपने लिये एक सुख की सांस खोजने के लिये। हमेशा शीतल छाया के लिये मौसम भरे रास्तों में भटकते फिरे। एक बूँद प्यार-सहानुभूति के लिये लगा कि खारा रेतीले समुद्र में जैसे जिन्दगीभर गोते लगाते रहे हों !

बुखार की तेजी में ही गुमसे-गुमसे स्टेशन पर आकर बेंच पर निढ़ाल-से पड़े थे। एक कुली ने आकर उन्हें पूछा था····शायद कहीं। अच्छा आदमी था

गया था······"नहीं, नहीं डॉक्टर साहब ! अभी भला कैसे जायेंगे। सवाल ही नहीं है जाने का ! बेमद बिगड़ी सेहत है। आप इनका माकूल इलाज करें। एकदम ठीक करना है इन्हें। ये मेरे बड़े काबिल उस्ताद रहे हैं। मेरे दिल में इनके लिये बड़ी इज्जत है। मेरा फर्ज है डाक्टर साहब यह तो·······"

उधर जाने वे किस दुनियाँ में विचर रहे थे·······क्या-क्या बोल रहे थे ······ कौन है ये मेरा केतकी !··· देखले तो····ये निपट रेतीले मरुधर में गंगा कहाँ से वह आई है···· ये कैसा प्यार का दरिया डुबो रहा है मुझे ! कौन है केतकी यह ! कौन है ये मेरा !··· बेटा ! पुत्र !····पुत्र की भला क्या परिभाषा है !····गाड़ी आ रही है·· सुनो, केतकी····गाड़ी आ गई है···चलो बैठें····· टकराम ने अपनी गोदी में उनका सिर रखकर गीले पानी की पट्टी रखी····एक घण्टा····दो घण्टा··· दवाई खिलाई····रस पिलाया··· थोड़ी तेजी कम हुई·· आंखें खुलीं। उसकी गोद की गर्माई पाकर बड़े प्यार से उसे देखा ··· जाने कौनसी खुशी उछली कि दो बूँद उसके हाथों पर ढुलक पड़ीं।

●●●

वह षड्यंत्री था !

वह जिस प्रतिष्ठान में नौकर था उसको वह छिन्न-भिन्न क
चाहता था ! वह चाहता था कि उस प्रतिष्ठान के परखच्चे उड़ जा
वह ऐसा क्यों चाहता था, यह मैं आज तक नहीं समझ सका । जैसी
इच्छा थी यदि वह पूरी हो जाती तो उसे कुछ लाभ होता ऐसा मैं नहीं
पाया । उल्टे उसकी जिन्दगी एक रेगिस्तान बन जाती और वह उस रेगिस
में तड़प-तड़प कर जान दे देता ।

उसके दिमाग में हर वक्त एक न एक षड्यंत्र का प्रारूप बनता रह
और वह उसे सफल बनाने में अपने परिवार की समस्याओं से भी अधिक
जूझता दिखाई देता । यहाँ तक कि उसकी रातों की नींद उड़ जाती, दाढ़ी के
बाल बढ़ जाते और उसका नहाना दो-दो, तीन-तीन दिन तक के लिए टल
जाता । अन्त में जब उसकी योजना धराशायी हो जाती तब वह जंगल के

मोर की तरह नाच-कूद कर अपने पाँवों की ओर देखता और खिसिया जाता।

जिस दिन उसकी कोई योजना विफल हो जाती तब उस दिन तथा उसके अगले चार-पांच दिनों तक उसकी हरकतें देखने काबिल होतीं। उन दिनों वह बड़ा खोया-खोया और उदास रहता। बात-बेबात चिढ़ जाता। बच्चों को डांटता, घर की चीजों को इधर-उधर फेंकता। यहाँ तक कि वह अपनी सुकुमार पत्नी तक को पीट देता। पत्नी को पीटते समय एक हिंसक पशु जैसा लगता।

उसकी पत्नी की सिसकियों की हल्की-हल्की आवाज बराबर बाहर के बरामदे में गूँजती रहती, उसके बाद सब शान्त हो जाता और समन्दर में उठे ज्वार-भाटे के बाद की स्थिति का आभास होने लगता।

षड्यंत्र उसकी जिन्दगी के अंग बन गये थे और उसकी दुनियां षड्यंत्रों के दायरे में फँस कर रह गयी थी। प्रतिष्ठान में आने वाले हर नये से नये अध्यक्ष को वह अपने अहम् का निशाना बनाता और बेबात ही उससे उलझ पड़ता।

वह अपने आपको लेखक कहता था और अपने प्रान्त की क्षेत्रीय भाषा का स्वयं को मसीहा समझता था। समझता तो वह अपने आप को बहुत कुछ था; पर दरअसल उसमें ऐसा कुछ था ही नहीं। उसका कोई अध्ययन नहीं था, विचार नहीं थे, दृष्टि नहीं थी। उसके यदि कोई विचार या सिद्धान्त थे भी तो उनका रंग स्थायी नहीं था, वह अपने विचारों पर नित नये कलाबत्तू टांकता रहता था।

मुझे याद है चौथे आम चुनाव के समय एक प्रतिक्रियावादी पार्टी के लोगों ने इन्दिराजी के भाषण के समय चप्पलें उछाली थीं, तब वह बहुत खुश हुआ था। यहां तक कि उसने तालियां बजायी थीं और अपने एक लेखक मित्र को चुनाव में हराने के लिए जी-जान से जुट गया था। कुछ दिनों बाद जब बांगला देश आजाद हो गया तब वह इन्दिरा-भक्त बन गया था और हर समय लोगों के सामने इन्दिराजी की कीर्ति-पताका फहराया करता था। इसके दो-चार साल बाद उसमें एक नया परिवर्तन दिखाई दिया। अब उसकी बात-चीत का मुख्य विषय वियतनाम होता। वह हर वक्त वियतनाम के लिये मुक्ति की दुआएं मांगता। वियतनाम के साथ-साथ अब उसकी जबान पर मार्क्स और लेनिन भी आ विराजे थे। वह अपनी बात चीत के मध्य में

5

"सब-कुछ बदल गया"

विश्वेश्वर शर्मा

* * *

किसी की चाह तो थी ही। यह मिल गई तो समझा शायद इसी की चाह थी, लेकिन जल्दी ही यह भ्रम टूट गया और हुआ कि चाह तो इसकी नहीं थी लेकिन यह मिल गई तो कोई बुराई भी नहीं हुई। कम से कम सरपट दौडते रथ के अश्वों की वल्गा तो किसी ने सँभाल ली। सफर अब ठीक कटेगा। फिर जिस किसी की चाह रही है, वह भी कहीं राह में मिल ही जाएगी। फिर जल्दी ही यह भ्रम भी टूट गया कि वह रथ को ठीक तरह हाँक सकेगी। वल्गा हाथ में थामते ही प्रमाणित हो गया कि वह अप्रशिक्षित है। सर्वथा नयी। उसे वल्गा थामने का ही अनुभव नहीं। कभी जोर से खींचती है, कभी थक कर लगाम छोड़ देती है, कभी कोड़ा लगाती है और घोड़ों को सरपट दौड़ने देती है।

यौवन का पहला वसंत ही था। रोम-रोम में कलिगाँ चटख रही थीं और उनकी गन्ध से साँस महक रही थी। रक्त इतना मदिर था कि लग रहा

था यह नशा पागल करके ही छोड़ेगा। इशारे से बुलाते ही चाँदनी निकट आ जाती थी। इन्द्र-धनुष हार बन कर गले में लटक जाता था। धूप चेहरे पर पसर जाती थी। बात करना चाहता तो बाँसुरी बज उठती थी।

उसके शरीर में एक विचित्र ऊष्मा थी। दहकते हुए पलाश-सी। जब निकट सटी हुई होती तो रोम-रोम की कलियाँ झुलसने लगतीं। दूसरे दिन बाग मुरझाया-सा लगता। फिर मैं उसे सींचता। फिर कलियाँ हरी हो जातीं। साँसों में गन्ध आने लगती।

जल्दी ही माँ के पल्ले बँधा रहने वाला चाबियों का झूमका उसके पल्ले बँध गया। आऊजी की जरूरतें उसके अधीन हो गईं। भाई-बहनों के दुलार का केन्द्र बन गई। जैसे आते ही वह छितर गई। पारे की तरह पूरे कुटुम्ब में बिखर गई और मैं इधर उधर लुढ़कने कणों को बटोरता ही रह गया।

आरम्भ मे एक ही वाक्य उसके मुँह पर चढ़ गया था जिसे वह बार-बार दुहराया करती थी। "नाराज हैं…" और मैं हमेशा एक ही उत्तर दिया करता था, "नहीं तो…" जाने क्यों? उसे मैं नाराज सा लगता था। नाराज तो मैं था नहीं। हाँ, अलबत्ता कुछ विरक्त अवश्य था। शायद यही विरक्ति उसे नाराजगी लगती थी। विरक्ति इसलिए थी कि भीतर छुपी हुई किसी की प्रतीक्षा मरी नहीं थी।

फिर एक अजीब प्रश्न पूछने लगी वह "आपको मैं कैसी लगती हूँ…?" जैसे उसे भीतर ही भीतर अनुभव होने लगता कि वह मुझे ठीक नहीं लगती। शायद उसे यह आत्मज्ञान हो गया था कि वह ठीक लगने जैसी है भी नहीं।

लेकिन जब मैं सहजता से कह देता "अच्छी लगती हो।" तो एक अज्ञात सन्देह को सहेजे भी आश्वस्त हो लेती।

कभी-कभी पूछ बैठती, "कहीं घूमने फिरने चलें। दिन भर इसी चार-दीवारी में कैद रहते हैं!"

मैं कह देता "चलेंगे…" तो वह इस तरह ताकती रह जाती, जैसे कब चलेंगे? अभी चलो न; लेकिन मैं उसके भावों को पढ़े-अनपढ़े करके घर से बाहर हो जाता। कई बार कहते-कहते उसने समझ लिया था कि मैं कहीं भी जाऊँगा नहीं और इसीलिए उसने यह कहना जल्दी ही छोड़ दिया था।

कुछ महीनों बाद ही उसमें एक विचित्र परिवर्तन आया था, जैसे किसी अटपटे जंगल में वसन्त आया हो।

मिलाई हुई सितार की तरह उसका यौवन सुर में आ गया था। अंग-अंग पर एक रोशनी पुत गई थी। आंखों में लज्जायुक्त आनन्द की बिजलियाँ कौंधने लगी थीं। मेरी तरफ वह एक विशेष अर्थ भरी दृष्टि से देखने लगी थी। मुझे उसका यह मौसमी रूप कुछ भाने लगा था। लेकिन जल्दी ही मेरी ललक पर पहरे लग गये थे। माँ उसे मुझसे अलग रखने लगी थी। उसका कुछ अधिक ध्यान रखने लगी थी। उसे कुछ भी काम नहीं करने देती थी।

जब उसके पहला बच्चा हुआ तो मुझे लगा यह मेरे रोम की कलियाँ, साँसों की सुगन्ध, अंग की चाँदनी, चेहरे की धूप और गले के इन्द्र धनुष को छीन कर बना है और यह अनुभव होते ही मुझे उससे एक प्रकार की डाह हो उठती।

वह विजयिनी की तरह उसे इस इस प्रकार छाती से चिपकाये रहती, जैसे उसने मेरा सारा धन लूट कर अपनी गोदी में भर लिया है। जैसे उसे मुझसे कुछ नहीं लेना है। कुछ नहीं पूछना है।

फिर कुछ वह अलग हो गई। यानी उस गोद वाले के साथ अधिक रहने लगी। वह कुछ बदल-सी गई, यानी अब जैसे कुछ बड़ी हो गई, कुछ अच्छी भी हो गई। जैसे अब ऐसी कुछ बुरी नहीं रही। मन होने लगा कि उसके पास थोड़ी देर बैठा जाय। लेकिन वह जो उसकी गोद में था। जिसे देखकर मेरे बचपन को सीमा-ज्ञान होता था। लगता था जैसे यह स्थिति इतनी जल्दी क्यों?

घर में आते ही मेरी मस्ती पर लाज के पहरे लग जाते थे। माँ अथवा पिताजी के पास उस नन्हें से जीव को देखता तो उल्टे पाँव वापस घर से निकल जाने का मन होता। कम से कम उस समय उनके सामने तो कभी पड़ता।

उसे लेकर वह कुछ इस तरह देखने लगी थी, जैसे सारा स्वामित्व अब उसी का है। जैसे उसने मेरी आत्मा को तोता बनाकर पिंजरे में रख लिया है। जैसे अब मेरा कोई अस्तित्व नहीं।

मैंने कई बार बात ही बात में कहा भी····

"आजकल बहुत बदली-बदली लगती हो।" तो उसने उसका अर्थ मात्र इतना ही ग्रहण किया जैसे आजकल वह कुछ आकर्षक और अधिकार-युक्त दिखाई देती है और यह सोचकर हर बार गर्व से उसका चेहरा सुर्ख हो गया।

अब उसने रथ की कल्पना बिलकुल छोड़ दी थी। और रथ में पसर कर बैठ गई थी। अश्व फिर किसी सारथी के लिए मचल उठे थे। उनकी चपलता दिग्भ्रमित-सी राह के इस मोड़ पर अड़ गई थी।

मैं ठगे गये यात्री की तरह उसकी ओर और उसके गोद वाले की ओर देखता ही रह जाता था। अकेले में वह उसे मेरी ओर बढ़ाती.... "लो न....!"

तो मैं एक प्रकार के डर से कँपकँपाया उसके सामने से चला जाता। वह कुछ अवाक सी, कुछ उदास सी और कुछ गुस्साई-सी मेरी ओर देखती ही रह जाती।

बाऊजी सोच रहे थे मेरे रथ को कहीं किराये पर लगा देने के लिए। कई बार कह चुके थे कि अब यह बचपन छोड़ देना चाहिए, कि अब मैं बच्चा नहीं रहा, बच्चे का.......हूँ।

मैं कस्तूरी के मृग की तरह अपने चारों ओर फैलाई जाने वाली जाली को देख रहा था। वे जंजीरें जो प्यार ने मेरे पाँवों में बँधने के लिए बढ़ी आ रही थीं। वे आदेशात्मक वाक्य जो मेरे बचपन को दुत्कार कर मेरे जीवन से बाहर कर देना चाहते थे। वह नन्हा-सा जीव जो मेरे मदोन्मत्त परीक्षित की छाती पर तक्षक की तरह कुंडली मार कर बैठ गया था।

वह दिन-दिन अधिक खुलती जा रही थी, अधिक सशक्त होती जा रही थी। अधिक अधिकार सम्पन्न होती जा रही थी। मैं अकेले ही लड़का रह गया था; लेकिन वह नारी हो गई थी। एक पूरी औरत। मुझे समझाने लगी थी, "अब आपको कुछ काम कर लेना चाहिए।"

काम का नाम सुनते ही मेरे शरीर पर चींटियाँ चढ़ने लगती थीं और मैं सोचने लगता, अब सवेरे उठते ही किसी के सामने जाना पड़ेगा, किसी अनजाने आदमी का सामना करना पड़ेगा। दिन भर काम करना पड़ेगा। महीने भर बाद कुछ रुपये मिलेंगे और वे सब उसे लाकर देने पड़ेंगे और फिर मुझे उसे देखकर फिर ऐसा लगता कि जैसे वह मेरी सारी स्वतन्त्रता पर पहरेदार बन कर बैठ गई है।

वह जब अपनी छाती का दूध उसे पिला रही होती तो मुझे एक विचित्र प्रकार की घिन होती और मैं सोचता, क्या इसी सब की जीवन को चाह थी ? तो तुरन्त ही मेरा विद्रोही मन भड़क उठता। एक अस्वीकृति मेरे विचारों में चीख उठती और एक प्रतीक्षा फिर प्रबल होकर मुझे पगला देती।

अब मुझे उसका स्वरूप किसी माँसभक्षी लता-सा प्रतीत होने लगता था। जो शनैः शनैः मेरे अंगों को अपने पाश में बाँधती जा रही थी और मेरा रक्तपान करने को मचल रही थी।

मैं जो किसी रजनीगधा की डालियों में अपना अस्तित्व समर्पित करना चाहता था, उस रक्त-पिपासु लता के घेरे में आकर कसमसा उठा था, तड़प उठा था।

बाऊजी ने मेरा रथ तीन रुपया रोज पर एक सरकारी विभाग को किराये दे दिया। विभाग के अधिकारी ने तुरन्त लगाम हाथ में ले ली और घुमाघुमाकर चाबुक दिखानी शुरू की तो मेरे अश्व चौकड़ी भूल गये और ताँगे के टट्टुओं की तरह आंखों पर पट्टी बँधवा कर नजर की सीध में चलने लगे। लेकिन भीतर ही भीतर एक विद्रोह अधिकाधिक प्रबल होने लगा, एक प्रतीक्षा अधिकाधिक घहराती गई। कई बार घोड़े रपट भी गये। अड़ भी गये। गर्दन छुड़ा कर भाग भी गये। लेकिन बाऊजी ने फिर मार-पुचकार कर जोत दिया। माँ ने सर पर हाथ धर कर पुचकारते हुए सीधे चलने की सीख दी और उसने अपनी जकड़ अधिकाधिक सख्त करदी, क्योंकि अब उसकी डालियों को रक्त की गंध आने लगी थी।

पहले माह का किराया बाऊजी को ही दिया था। बाऊजी ने वह माँ को दे दिया था, इस आदेश के साथ कि वह उसे बहू को दे दे। माँ ने वह सब उसे सौंप दिया था। वह अपने लिए कुछ नये वस्त्र और शृंगार-प्रसाधन लाई थी। कुछ गोद वाले के लिए वस्त्र-खिलौने लाई थी। मुझसे भी पूछा था—

"आपके लिए भी एक कमीज पेंट सिलवा दूँ....?" तो मैंने मना कर दिया था, "अभी तो हैं, रहने दो।" फिर भी एक कमीज का पीस वह मेरे लिए भी ले आई थी। मैंने उस पीस की तरफ इस तरह देखा था जैसे कोई नया कैदी जेल की जेल की पोशाक को देखता है। मुझे उस कमीज से घृणा हुई थी। मैंने एक अर्से तक उसे नहीं पहना था।

दुर्गन्ध मिल गई है। जैसे आँखों में एक अजीब-सा जाला हर समय बना रहता है, जिससे दृश्य सब धुँधले दिखाई देते हैं।

ऋतुओं के एक आकस्मिक बदलाव की हैरानी से मैं ग्रस्त था। समय जो वापस पीछे नहीं जाता उसे पीछे धकेल देने की व्यर्थ मानसिक कोशिशों से थका हुआ।

उसने अपनी आत्मीयता और अधिक नंगी कर दी थी। अधिकार को और अधिक निर्लज्ज कर दिया था। उसने मुझसे कहा था—

"कहीं अलग मकान ले लो। इन दो छोटे-छोटे कमरों में सबके बीच रहते हुए बड़ी शर्म आती है। दो मिनिट भी अकेले बैठकर कोई सलाह-मशविरा नहीं कर सकते।"

सुन कर मुझे इस प्रकार की खीज-सी हुई थी। बहुत कुछ कह देने का मन होते हुए भी मैंने उसमें कुछ कहा नहीं था। खाली-खाली आँखों से उसे देखता रहा था और "सोचेंगे" कहता हुआ उसके सामने से सरक गया था।

उसे अपनी सलाह की ऐसी कटु उपेक्षा बुरी लगी थी। तब ही वह दूसरे दिन कुछ चढ़ी-चढ़ी थी। जैसे उसने चेहरे पर नाराजगी ओढ़ ली थी। यह ओढ़ी हुई नाराजगी औरों की अपेक्षा मेरे सामने रहने पर और अधिक गाढ़ी हो जाती थी। मैं उसका कारण समझ कर जैसे होठ ही होठ में मुस्करा देता और वह इस मुस्कराहट से जैसे भीतर ही भीतर भभक उठती।

एक बार विस्फोटक स्थिति में कहने लगी, "अब मुझसे यहाँ नहीं रहा जायेगा। यह भी कोई जिन्दगी है! घर नहीं हुआ, सराय हो गई!"

सुनते ही मेरी आँखों में क्रोध की रेखा आ गई थी। लेकिन माँ ने उसे तुरन्त देख लिया और एक अतिरिक्त उत्साह से बोली "बहू ठीक ही कह रही है, यहाँ ये दो कमरे... हर वख्त बिचारी को लजाई-लजाई रहना पड़े। किसी टैम तुझसे कुछ बात करना चाहे तो भरे घर में नहीं कर सके। दस-बीस रुपये में पड़ौस वाले लालाजी की हवेली में दो एक कमरे क्यों नहीं देख लेता।"

बाद में बाऊजी ने भी इसी बात की ताईद करदी कि मुझे सुविधा की दृष्टि से अलग मकान ले ही लेना चाहिए।

माँ खुद जाकर लाला के घर बीस रुपये में दो कमरे तय कर आई और मुझे मन नहीं मानते हुए भी पड़ौस वाले लाला के घर जाना ही पड़ा।

क्योंकि ऐसा कुछ अलगाव नहीं हुआ। माँ-बाऊजी, छोटे-छोटी सब इधर आते रहे। हम उधर जाते रहे; लेकिन जैसे भीतर ही भीतर सब कुछ एकदम बदल गया और लगने लगा कि इशारे से बुलाने पर चाँदनी कभी नहीं आती—चेहरे पर धूप का पसराव बहुत अस्थाई है। साँसों में दुर्गन्ध होती ही है इन्द्र-धनुष गले का हार कभी नहीं बनता····बात और बाँसुरी में बड़ा फर्क है और जिसकी प्रतीक्षा की जाए वह कभी नहीं मिलता।

●●●

6

"केवल एक सुबह"

हुलासचन्द जोशी

* * *

कल मैदान किस के हाथ रहेगा ! स्पष्ट कुछ भी नहीं कहा जा सकता । तीव्र संघर्ष में कौन-किसको नीचे धकेल दे—भविष्यवाणी कोई मूर्ख ही कर सकता है ।

पिछले कुछ दिनों से मैं भी लोगों की निगाह में आ गया हूँ । फिर भी पुरानों की अपेक्षा काफी नया हूँ ....। अभी पैर जमाने में समय लगेगा ।

काफी लम्बे समय से विषय को नियन्त्रण में लाने का प्रयत्न कर रहा हूँ ।

परिणाम !

कुछ भी रहे । मुझे सन्तोष है । विषय मेरी पकड़ में है ।

शीर्षक पढ़ते ही मुँह से सीटी निकल गयी थी ।

और ! विषय दिमाग में घूमने लगा । दिमाग में उथल-पुथल-सी मच गयी थी ।

जैसे लगता था—मैं धारा प्रवाह—विचारों के अनुसार-उतार-चढ़ाव लेता बोलता जा रहा हूँ। श्रोताओं की तालियों की गड़गड़ाहट से हॉल गूँज उठता है।

आज तक मैं अपने विषयों पर बहुत सफल रहा हूँ। कभी हड़बड़ाया-हिचकचाया नहीं। सफलता की सीढ़ी चरमरायी नहीं। कल की सफलता मेरा नाम दूर-दूर तक कर देगी....।

केवल कल के लिए—

सप्ताह भर पहले बीवी-बच्चों को उनकी ननिहाल छोड़ आया था। सारा काम असमय और बेतरतीब चल रहा है। जब तक लक्ष्य मिल नहीं जाता—साँस लेना मुश्किल है।

साँस कभी गर्म-कभी तेज-कभी सुस्त चल रही है। अजीब बात है।

मेरा विषय है—'मानवता और धर्म....।' खुशी से मैंने शीर्षक को चूम लिया था।

धर्म ने मानव को आज तक दिया ही क्या है?

धर्म ने मनुष्य को भेड़िया बना दिया... ईर्ष्या और घृणा....आदमी-आदमी के बीच सीमा-रेखा धर्म ने खींची थी। विज्ञान के प्रतिपल बढ़ते कदमों को धर्म ने रोकना चाहा। किन्तु विज्ञान स्वयं में सत्य है। उसका लक्ष्य मानवता है। धर्म उसकी गति को नहीं रोक पाया है।

धर्म क्या है? स्वार्थी लोगों का पेट भरने और ऐश करने का साधन है। मानव हृदय के कोमल अंशों को छू कर मानवता को चट्टानों के नीचे दबा देने वाला पत्थर।

काश! धर्म की जगह केवल मानवता होती! करोड़ों इन्सानों का आपसी रिश्ता होता! भूखे-नंगे और बेबस इन्सान न होते। मनुष्य-मनुष्य का मूल्य जानता!

वैसे तैयारी पिछले एक महीने से करता आ रहा हूँ। लिखता हूँ—अभ्यास करता हूँ और बड़बड़ाता हूँ। जो विचार मुझे पसन्द नहीं, उन्हें काट देता हूँ। कभी-कभी पूरा कागज ही फाड़ देता हूँ। फिर सब कुछ नया लिखता हूँ।

इस बीच खाना-पीना होटल में है। कब खाया—नहीं खाया। कुछ भी ध्यान नहीं।

बस ! मैं हूँ—कागज है—कलम है ।

मैंने अपनी कल्पना में कई वक्ताओं को उतारा । उन्हें सुना । फिर बहुत ही सुलझे विचारों से उन वक्ताओं को धराशयी किया । क्रिया-प्रतिक्रिया—प्रतिक्रिया-क्रिया चल रही है ।

सभी वक्ताओं को अल्प समय में अपने-अपने विचार निचोड़ कर रख देने हैं ।

फर्श पर कागज ही कागज ही कागज बिखरे पड़े हैं । आप कमरे में घुसें तो यही समझेंगे, 'यह आदमी कागज चबाता है । कागजों पर जीवित है ।'

बड़बड़ाता इतना हूँ कि आप तरस खायेंगे, 'कल तक का दिन सही-सलामत गुजर जाए तो अच्छा है ।'

मजदूरों को घास काटते—खान खोदते—पत्थर फोड़ते—बोझा ढोते पसीना आता है और मुझे—लिखते, बड़बड़ाते पसीना आ रहा है ।

और—

यह सोच कर पसीना बहने लग जाता है, 'कल कोई स्थान न मिला तो ।'

वैसे मैं कई बार प्रथम आ चुका हूँ । मेहनत इससे चौथाई भी नहीं की थी ।

कल की प्रतियोगिता की बात कुछ और है ।

अध्यक्षता भारत के प्रसिद्ध विद्वान कर रहे हैं ।

जब सारी दुनियाँ खर्राटे भर रही है । मैं जागता हूँ । शीर्षक के चारों ओर पहरा देता हूँ । कभी-कभी तो स्वयं ही हँस पड़ता हूँ । आदमी नाम के लिये क्या से क्या हो जाता है ? कैसी हालत बना लेता है ?

इन दिनों दोस्त से मिला नहीं । महीने भर से एक भी सिनेमा देखा नहीं । अखबार के दर्शन नहीं.......।

इन दिनों मेरे पास कोई नहीं आता । व्यवहार इतना रूखा हो चला है कि कोई भूल से आ भी गया तो ज्यादा देर टिका नहीं । उन्हें यों ही ठण्डा-मीठा करके निकाल देता ।

आज की रात आखिरी रात है। कल सुबह आठ से ग्यारह बजे खेल खतम।

कौन हो सकता है ?

खट्-खट् की आवाज पहले धीमी और फिर तेज होती गयी।

मैं नहीं उठा।

शायद जोर से खट्खटाकर ही चला जाए।

खटखटाहट बढ़ती गयी। हजारों गालियाँ बड़बड़ाता मैं दरवाजे की ओर बढ़ा।

जोर के झटके से दरवाजा खोला, 'कौन है ?'

सामने एक दयनीय-कान्तिहीन-स्थिर और शान्त भाव से एक व्यक्ति खड़ा था। मैंने चेहरे को तानकर, आँखें लाल कर और खीज कर कहा, 'क्या चाहिए ?'

'रोटी !' उसका छोटा-सा उत्तर था।

धीमी आवाज मुश्किल से कानों तक पहुँची।

'भीख माँगता है। अभी तो जवान दिखता है। हाथ-पैर भी सही-सलामत हैं। थके-माँदे जरूर हो। फिर भी मेहनत कर सकते हो। आखिर तुम भी मनुष्य हो। मानवता के नाम पर तुम ''।' मैं कुछ और कहता उसके पहले वह मिनमिनाया, 'रोटी !'

वैसी ही धीमी और मरी-मरी-सी आवाज।

मैंने टालने के लिए कहा, 'कोई दूसरा घर देखो। मैं तो खुद होटल पर खाकर आता हूँ।'

मैंने खटाक से दरवाजा बन्द कर दिया।

कुर्सी को पीछे करके पैर टेबल पर फैला दिए। कुछ देर विचार की मुद्रा में बैठा रहा। एक-एक तर्क को दोहराने लगा। जैसे लाटरी की चकरी घूम रही है और नतीजा मेरा ही निकलने वाला है।

खट्-खट् की वही आवाज।

वापिस विघ्न पड़ा। देर तक खट्खट् होती रही। मैं भी डटा रहा, 'खटखटाए जा बेटा !'

वह नहीं रुका और मैं झुँझला कर उठ पड़ा। आहिस्ता से दरवाजा खोला। आवाज आयी 'रोटी !'

मैंने समझाया, 'अरे भाई ! क्यों तू तेरा और मेरा समय बर्बाद कर रहा है ? यहाँ रोटी छोड़ कर अन्न का एक दाना भी नहीं है।'

मुझे क्रोध बहुत जल्दी आता है। आज नहीं आया।

मानसिक तनाव बढ़ जाने का भय था। मुझे कल तक सन्तुलन बनाए रखना है।

"साहब ! एक रोटी मिल जाती, तो सुबह तक के लिए गुजारा हो जाता। काफी समय से एक दाना भी पेट में नहीं गिरा है।'

मुझे लगा जैसे मेरे सामने कोई आदमी नहीं मक्खी भिन-भिना रही है।

'भाई जान ! तू भी अजीब आदमी है। रोटी कहाँ से दू दूँ ! पेट फाड़ कर दे दूँ।' मैंने धीमे से कहा, 'कोई और घर की तलाश करलो। तेरे लिए कुछ नहीं कर सकता। मेरे लिये एक-एक मिनट कीमती है। जितना समय तूने यहाँ बर्बाद किया—उतने में तो कहीं से रोटी प्राप्त कर लेता। अच्छा ! अब जाओ। मुझे काम करना है।'

उस आदमी ने सूनी-सूनी आँखों से मुझे देखा। उसकी आँखों में कुछ था जरूर किन्तु मैं पहचान नहीं पाया। वह कुछ और गिड़गिड़ाए उससे पहले मैंने दरवाजा बन्द कर दिया।

दरवाजे पर ध""स की आवाज आयी जैसे किसी ने बहुत भारी पत्थर रख दिया हो।

मैंने सोचा वह जा रहा है और यह आवाज उसके पैरों के घसीटने से आयी है।""

सोकर उठा तब तक पाँच बज चुके थे। सब चिन्ताओं को छोड़—शरीर से आलस दूर करने के लिये अंगड़ाई ली और शरीर को इधर-उधर कुछ झटके दिए। फिर जोर से उबासी ली।

पर्चों को पलट कर सभी तर्कों को फिर से दोहराया। सूर्योदय होने ही वाला था। ताजी हवा लेने के लिए मैं दरवाजे की ओर बढ़ा। धीरे-धीरे दरवाजा खोलने लगा।

दरवाजा कुछ भारी-सा लगा—जैसे वह मुझ पर गिर पड़ेगा। सम्भालते-सम्भालते एक भारी चीज मेरे पैरों पर गिर पड़ी। मैंने सोचा दरवाजा जड़ से उखड़ गया है—किन्तु यह तो कोई मानव देह थी।

मैं हड़बड़ा कर भय से पीछे हट गया।

वह रात वाला भूखा व्यक्ति था।

मुझे सारी धरती घूमती नजर आयी। प्रतियोगिता का समय होने जा रहा था। मैंने मुड़कर अपनी टेबल पर दृष्टि डाली—वह भी घूम रही थी। उस पर पड़े सभी पन्ने फड़फड़ा रहे थे। जैसे अधमरे भूखे-नंगे इन्सान मरने से पहले थरथरा रहे हैं····आखिरी बार।

जैसे मैं लाशों के ढेर के बीच खड़ा हूँ। लाशें कागजों को रोटी की तरह चबा रही हैं। कागजों की चरचराहट से आवाज उठ रही है—रोटी···· रोटी ·· रोटी।

उस देह को ठीक कर मैंने चादर डाल दी।

आसपास आवाजों की फुसफुसाहट का शोर उठने लगा। लोगों को ताजा समाचार मिल गया—चर्चा करने को। लोगों की भीड़ में, 'एक आदमी भूख से मर गया।'

शायद इसी समाचार पर राजनैतिक पार्टियाँ विधान-सभा में बहस कर सकेंगी।

होने को बहुत कुछ हो सकता है और कुछ न हो। सब कुछ समय और परिस्थिति पर निर्भर है।

वास्तव में कुछ नहीं हुआ। शोर जिस तेजी से उठा उसी तेजी से शान्त हो गया। शायद चुनावों में अभी देर है····। खैर!

मैंने अधीरता से कहा, 'डाक्टर साहब! कोई आशा!'

डाक्टर ने एक बार नब्ज और देखी, 'आदमी मर चुका है।' मेरी आँखों से आँसू चू पड़े। इतने दिनों का आवेग क्षणभर में पानी की धार में बह गया।

डाक्टर ने सहानुभूति से मेरी ओर देखा और बैग उठाते हु
'मिस्टर शर्मा, आप क्यों रोये ?

आँसुओं को रुमाल से सुखाकर कुछ संयत होते हुए बोला, '
साहब ! यह तो निश्चित था कि यह आदमी आज नहीं तो कर
कल नहीं तो परसों····मरता । अपनी इस शेष जिन्दगी में उसने मुझसे
एक सुबह माँगी थी और वह मैं इसे नहीं दे सका ।'

मैं कमरे में कुछ देर घूमता रहा ।

कागजों के ढेर को इकट्ठा किया और सबमें आग लगा दी
क्या खाक बोलूँगा ! जिस मानवता के पक्ष के लिए इतने दिन से परेश
वह मेरे ही दरवाजे पर आकर दम तोड़ बैठी ।'

किसी किसी विद्यालय मे जमीन के अभाव से भले ही कृषि के औजारों को जंग खा रहा हो, वरन् यहाँ एक फावड़े से पाँच बालक क्यारियाँ बना रहे हैं तो एक तगारी दस छात्रों की आशा बनी हुई थी। आए दिन कन्टिन्जेन्सी की रकम चरुओं की अनुपस्थिति मे मिट्टी के कलशों के एवज में कुम्हारों के घर जाती है, तो दो ही बाल्टियों से पौधे और बच्चे सभी सींचे जाते हैं। प्रधानाध्यापक ने अपने प्रार्थना-पत्र की माँग-सूची के चौथे पृष्ठ की आखिरी पंक्ति पर ज्योंही ४ लोटों की संख्या लिखी कि चपरासी द्वारा घटना सुन कर उस संख्या को बढ़ा कर ५ कर दी।

"लोटा कुई में गिरा दिया ?" अपनी गर्दन उठाते हुए प्रधानाध्यापकजी ने पूछा।

"मैंने नही गिराया," रोते हुए सत्यपाल ने जवाब दिया।

"मैंने नही गिराया, तो क्या यह तेरा बाप झूठ बोल रहा है ?" प्रधानाध्यापक ने कड़क कर कहा।

सत्यपाल डर के मारे कांपने लग जाता है। आज चपरासी बड़ा खुश है। पहले एक बाल्टी, तीन रस्से और कोई ४ लोटे कुई में पड़ चुके थे। मगर हर बार ऐसे ही शब्दों की मार उसे स्वयं को सहनी पड़ी थी। अबकी बार उसे उतना ही आनन्द आ रहा था जितना पहले छात्रों को, उनका पक्ष लेते हुए प्रधानाध्यापक के शब्दों को सुनने से आता था। यह एक ऐसा मौका हाथ लगा कि अपने घर पर रखी स्कूल की बाल्टी को भी कुई में गिरी बता कर सारी वसूलियाँ उस छात्र से करा सकता है। अब उसे किसी हानि का भय नहीं है। विद्यालय का सबसे बड़ा अधिकारी आज उसकी हाँ में है। अब चाहे कुछ वाचाल बालप्रिय-शिक्षक उसके विपक्ष में क्यों न हों। उसने गवाही के लिये बाहर खड़े छात्रों में से युधिष्ठिर की ओर संकेत करते हुए कहा :—

"होकम यह झूठ बोल रहा है, आप उस युधिष्ठिर को पूछिये इसने लोटा कुई में गिरा दिया है।"

तनिक मन में शंका हुई कहीं कमबख्त मना नहीं कर दे, नहीं तो मामला उल्टा पड़ जायेगा। ताते लोहे पर चोट से जोड़ जल्दी लगती है। मौके का फ़ायदा उठाके चपरासी ने फौरन युधिष्ठिर से पूछा—

"तुम झूठ नहीं बोलते हो, भले ही तुम अस्काउट नहीं हो। क्यों युधिष्ठिर, इसने डाला था न लोटा ?"

"हाँ माटसाहब, इसने लोटा कुई में गिराया था। मैंने अपनी आँखों से देखा।" युधिष्ठिर ने आगे बढ़ कर गवाही दी।

युधिष्ठिर ने कहने को तो कह दिया, मगर मन ही मन सोचने लगा, चपरासी कहीं झूठ तो नहीं बोल रहा है! वास्तव में मैंने तो इसे देखा नहीं। हाँ, मगर चपरासी ने इसी का नाम क्यों लिया? निश्चय ही इसी ने गिराया होगा और फिर नहीं भी गिराया हो तो क्या है! यही तो अवसर है बदला लेने का। इन स्काउट्स की प्रधानाध्यापकजी बेहद तारीफ करते हैं। इसलिये थोड़ी इनके मार भी पड़ जाय तो बैलेन्स बराबर हो जायेगा। अब कुछ भी हो, मुझे तो 'हाँ' करनी ही है।"

इधर चपरासी को अब थोड़ा होश आया। ललाट से पसीना पोंछा, एक लम्बी साँस ली। सोचने लगा, "चाहे लोटा कुई से बाहर निकले या नहीं, वरन् कम से कम मैं तो कुए से बावड़ी में आ गया हूँ। यदि युधिष्ठिर ना कर देता तो क्या होता?" उसने प्रधानाध्यापक जी से कहा,

"साहब, अब तो मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ?"

प्रधानाध्यापक को सुन कर खेद हुआ। वे इतने दिन इसलिये छात्रों का पक्ष लेते थे कि शिकायत अक्सर बालचरों की आती थी तथा स्काउट का पहला नियम वे भी हृदय से जानते थे कि 'स्काउट का वचन विश्वसनीय होता है,' अतः वे उनके बचनों पर कैसे अविश्वास करते? इधर वे चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के मनोविज्ञान से भी भली प्रकार से परिचित थे। 'कहीं कचरा पड़ा है तो वह छात्रों ने बिखेरा है और यदि कक्षा में टेबल कुर्सी पर कई दिनों की धूल जम रही है तो वह भी छात्रों द्वारा उसे बदनाम करने हेतु जानबूझ कर बिखेरी गई है। ऐसे दोषारोपण करते ये लोग नहीं हिचकिचाते। कहीं चपरासी की काली करतूतों से निरपराध बालक, व्यर्थ न पिट जायें, इसी भय से वे बालकों का ही पक्ष लेते थे। मगर अबकी बार तो शैतान रंगे हाथों पकड़ा गया है और गवाह भी है, इस पर भी वह झूठ बोल रहा है। यह कौनसा स्काउट? उन्हें भारी क्रोध आया और पास पड़े डंडे पर हाथ डाला। उस समय ट्रेनिंग में पढ़े शिक्षा-सिद्धान्तों और बाल मनोविज्ञान को ताक में रख चुके थे। सहसा उनके मुँह से यह वाक्य निकल पड़ा, 'Spare the rod & spoil the child' और झपट पड़े १२ वर्ष के रोते और कांपते बालक पर। दो इधर और दो उधर, एक दो पीठ पर और

एक सिर में भी दे मारी हाथों के बहाने। उसके सिर से खून की धार निकल पड़ी। इसी समय बाहर से रुदनयुक्त जोर की चीख सुनाई दी। "गुरुजी, इसे मत मारो लोटा छीना झपटी में मेरे हाथ से गिरा था।"

चारों ओर स्तब्धता छा गई। आवाज सुन कर कार्यालय के बाहर दोनों ओर कतारें लग गईं। अध्यापक भी भागे-भागे वहाँ आगये। छात्रों को देखने का आनन्द आ रहा था, लेकिन आनन्द में डर का मिश्रण था कि कहीं उनको भी मार न पड़ जाय।

प्रधानाध्यापक ने गंभीरता से पूछा, "यह किसकी आवाज है?"

"यह लक्ष्मणसिंह है।" एक छात्र ने उत्तर दिया।

"वह शैतान कहाँ है?" प्रधानाध्यापक ने क्रोध में पूछा।

"यह खड़ा-खड़ा रो रहा है।" बारह से छात्रों ने एक साथ कहा।

"और तुम सब यहाँ क्या मदारी का खेल देख रहे हो?" प्रधानाध्यापक ने डंडा लेकर आगे बढ़ते हुए कहा।

सभी छात्र अपनी-अपनी कक्षाओं में भाग गये। वे अपने प्रधानाध्यापकजी की आदत को खूब अच्छी तरह से जानते थे। 'चाहे कक्षा में हल्ला कोई दूसरा ही कर रहा हो, मगर सर्वप्रथम उनकी पकड़ में जो आता उसको तो फिर छठी का दूध ही याद आ जाता।'

अब बरात लक्ष्मणसिंह पर उतरी। छः डंडे अपने हिस्से के उसने भी पाये। हालांकि वह प्रथम डंडे से पूर्व ही अपराध स्वतः स्वीकार कर चुका था मगर सत्यपाल की व्यर्थ मार का प्रायश्चित इसके अलावा और कौनसा हो सकता है?

"बैठा दो इन दोनों को इस कोने में और बुला लाओ इन नीचों के बापों को। आज मैं पहिले जितनी चीजें कुई में गिरी हैं, सबकी कीमत इनके बापों से वसूल करूँगा।" प्रधानाध्यापक ने गरजते हुए चपरासी से कहा।

"जी हुकम, अभी लाता हूँ।" चपरासी ने हाथ जोड़ कर जाते हुए कहा। "पालीवाल जी, आप कागज पेन्सिल लेकर मेरे पास बैठिये और इनके बयान लीजिए।" प्रधानाध्यापक जी ने एक शिक्षक से कहा।

"साहब, बयान मेरे ख्याल में स्याही से लिखे जाने चाहिये।" श्री पालीवाल ने विनम्र भाषा में सलाह दी।

"हाँ साहब, पेन्सिल के अक्षर मिट भी सकते हैं।" एक दूसरे शिक्षक श्री शर्मा ने हाँ में हाँ मिलाई।

"और हो सकता है मामला अदालत तक ले जाना पड़े।" तीसरे शिक्षक श्री आमेटा ने शंका प्रकट की।

"अदालत में क्या ! चाहे सुप्रीम कोर्ट में भी जाना पड़े तो मैं जाऊँगा, मगर सभी वस्तुओं की कीमत वसूल न कर लूँ तो मैं प्रधानाध्यापक नहीं।" प्रतिज्ञा करते हुए प्रधानाध्यापकजी ने कहा।

सब कुछ कहा जा रहा था, मगर प्रधानाध्यापकजी का हृदय सत्यपाल के खून को देख कर धुकुर-धुकुर कर रहा था। उनके मन में डर पैदा हुआ, कहीं मामला सचमुच ही बढ़ न जाय। फिर भी क्योंकि उन्होंने अपराध स्वीकार कर लिया था, अतः उनका मनोबल गिरने से बच रहा था।

"नमस्कार साहब, नमस्कार साहब !" दोनों के पिताओं ने प्रधानाध्यापकजी को अभिवादन किया।

"पधारिये, विराजिये ! बड़े खेद की बात है कि हम जिन्हें आदर्श स्काउट मानते थे उन्हीं की काली करतूतों ने आज आपको यहाँ आने का कष्ट दिया है।" प्रधानाध्यापकजी ने भर्त्सनापूर्ण शब्दों में कहा।

"साहब, आप तो हमारे गुरु हैं, यदि इन बच्चों से कोई त्रुटि हो गई हो तो हम दोनों क्षमा चाहते हैं।" सत्यपाल के पिता ने हाथ जोड़ प्रार्थना की।

"त्रुटि क्या ? इन बदमाशों ने लोटा कुई में डाल दिया है।" प्रधानाध्यापक ने कहा।

"तो साहब, हम निकलवा देंगे।" लक्ष्मणसिंह के पिता ने कहा।

"यदि कुई से कुछ निकल सकता तो पूर्व में गिराई दो बाल्टियों, तीन रस्सियों और ४ लोटों को हम नहीं निकलवा लेते ?" प्रधानाध्यापक ने कहा।

"ऐसा क्या कारण है, साहब ?" सत्यपाल के पिता ने पूछा।

"कारण क्या ? पूरी २०० फीट गहरी है दो सौ फीट।" श्री शर्मा ने कहा।

"आप तो बयान लिखना प्रारंभ करें पानेरी जी, जैसा नियम में होगा वैसा होगा।" प्रधानाध्यापक जी ने कठोर स्वर में कहा।

"हाँ, सत्यपाल यह बताओ कि तुम लोटा लेकर कुई पर क्यों गये ?" प्रधानाध्यापक जी ने पूछा।

"पानी पीने" सत्यपाल ने रोते हुए उत्तर दिया।

"क्या मटके में पानी नहीं था ?" प्रधानाध्यापक जी ने फिर पूछा।

"पानी था साहब" चपरासी बीच में ही बोल उठा।

"तुम चुप रहो जी" प्रधानाध्यापक जी ने रोकते हुए कहा।

'ऐं....ऐं.... पानी तो था मगर छाना हुआ नहीं था।" सत्यपाल ने जवाब दिया।

"हूँ....छाना हुआ नहीं था ! तो तुम लक्ष्मणसिंह को साथ क्यों ले गये ?" प्रधानाध्यापक जी ने आगे और प्रश्न किया।

"ऐं .. ऐं....मेरे से बाल्टी नहीं खिचती है। ऐं... ऐं....इसलिये ले गया था।" सत्यपाल ने जवाब दिया।

"तो तुम कुई पर पानी पीने गये या लोटा अन्दर डालने ?" प्रधानाध्यापक जी ने पूछा।

"लक्ष्मणसिंह ने पानी का भरा लोटा मेरे से छीना था, इसलिये लोटा उसके हाथ से फिसल कर कुई में गिर पड़ा।" सत्यपाल ने बयान दिया।

"लक्ष्मणसिंह तूने लोटा क्यों झपटा ?" प्रधानाध्यापक जी ने पूछा।

"सर, मैं भी सुबह का प्यासा था।" लक्ष्मणसिंह ने जवाब दिया।

"तुमको किसने सौगंध दी थी कि तुम सुबह से पानी मत पीना ?" प्रधानाध्यापक जी ने रोष में पूछा।

"नहीं सर ...लेकिन मटका कभी साफ़ नहीं करते हैं, इसलिये मुझे पानी में बू आती है।" लक्ष्मणसिंह ने डरते हुए उत्तर दिया।

"बू तुम लोगों को ही आती है। आप लिखोजी, इन्होंने अपराध स्वीकार किया। १० रु. का वह लोटा था उसकी पाँच गुनी कीमत ५० रु. लक्ष्मणसिंह से वसूल कर स्कूल में जमा किये जायें।" प्रधानाध्यापक जी ने एक निर्णय को लिखने के लिये श्री पानेरी को कहा।

"अरे साहब; हम लोटा ही दूसरा ला दें तो ?" लक्ष्मणसिंह के पिता ने प्रार्थना की।

"नहीं, नियम यह नहीं कहता है। आपको तो ५० रु. विद्यालय में जमा कराने ही होंगे। अन्यथा लक्ष्मणसिंह यहाँ नहीं पढ़ सकता और सत्यपाल को भी पूर्व में जितनी चीजें कुई में पड़ी हैं उनके ५० रु. जमा कराना होगा, नहीं तो उसे विद्यालय से निकाल दिया जायेगा।" प्रधानाध्यापक जी ने तपाक से दण्ड सुना दिया।

"लेकिन माफ करना, दूसरी चीजों का इससे क्या सम्बन्ध है ?" सत्यपाल के पिता ने पूछा।

"यही कि एक का चोर सारे का चोर।" प्रधानाध्यापक जी ने जवाब दिया।

"हम एक के बजाय दो लोटे स्कूल में भेंट कर दें साहब, वह किस प्रकार का था ?" सत्यपाल के पिता ने पूछा।

"नहीं आपको तो पैसे ही जमा कराने हैं।" प्रधानाध्यापक जी ने कहा।

"लेकिन पैसे जमा कहाँ कराने हैं ?" सत्यपाल ने पूछा।

"कहाँ क्या ? स्कूल में " स्कूल में।" प्रधानाध्यापक ने कड़क कर कहा।

"क्यों साहब ?" सत्यपाल ने डरते हुए प्रश्न किया।

"चूँकि लोटा तेरे बाप का नहीं था।" प्रधानाध्यापक जी ने क्रोध से कहा।

"नहीं साहब, लोटा तो मेरा ही था।" सत्यपाल ने तत्काल से उत्तर दिया।

"हैं....लोटा अपना ही था ?" सत्यपाल के पिता ने जिज्ञासा से पूछा।

"हाँ, हाँ, अपना भरत वाला लोटा।" सत्यपाल ने कहा।

"लोटा तुम्हारा था ?" प्रधानाध्यापक जी का मुँह लटक गया।

"हाँ गुरुजी मैं हमेशा पानी पीने के लिये साथ लाया करता हूँ। वह मेरा ही था।" सत्यपाल ने कहा।

"तो लोटा स्कूल का नहीं था ?" श्री पानेरी जी ने कलम रोक कर पूछा।

बाहर से एक छात्र अपने हाथ में विद्यालय के दोनों लोटे बताते हुए कहता है, "स्कूल के तो दोनों लोटे ये रहे"।

○○○

8

मोतियों की बौछार

जमनालाल शर्मा

* * *

धीरेन्द्र शरणार्थी शिविर के पंक्तिबद्ध लगे तम्बुओं के सामने फैले विशाल प्रांगण में टहल रहा है। बीच-बीच में गुनगुनाने लगता है पर वाणी मुखरित नहीं हो पा रही है। स्वय भी सोच नहीं पा रहा था कि मन का दर्द होठों पर आते-आते क्यों रुक जाता है? हृदय की अन्तर्वेदना आन्तरिक ज्वार की तरह अन्दर ही अन्दर हिलोरे ले रही थीं। परिजनों एवं जन्मभूमि का विद्रोह सहस्त्रों विच्छुओं के एक साथ डंक मारने की तरह मन को दग्ध कर रहा था। शिविर की चहल-पहल से अपने को अलग करते हुये, धीरेन्द्र के अतीत की घटनाओं के दृश्य, आँखों के सामने चित्रपट की तरह आने लगे। बचपन की बाल सुलभ चेष्टाएँ, गाँव की हताई, चारों तरफ शीशम के पेड़ों से आच्छादित घनी छाया, बड़े बुजुर्गों का विश्रामस्थल, हिन्दू-मुस्लिम मेलजोल का अद्भुत अनूठा दृश्य, अतीत की सुखद अनुभूति स्मृतिपटल पर आने लगी। मन एकदम बेचैन हो उठा तारीख तो याद नहीं है, पर दिसम्बर मास की

बात है सायंकाल रेडियो का स्विच आन भी नहीं कर पाया था कि धांय-धांय की आवाज से सनसनी फैल गई। वह समझ नहीं पा रहा था कि अचानक यह हो क्या रहा है? रोने चिल्लाने की दर्दभरी आवाजें तीव्रतर होने लगीं। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा खाट पर बैठा-बैठा सुनता रहा। सविता, महमूद के घर खलीफा की शादी में शरीक होने गई थी। अचानक, सविता ने भयमिश्रित मुद्रा में भागती हुई घर में प्रवेश कर कहने लगी—बैठे क्यों हो? महमूद के लड़के को तो सिपाही पकड़ ले गये हैं, तथा सारा असबाब लूटकर घर में आग लगा दी गई है। आग............क्यों लगाई आग? क्या आस-पास में कोई बुझाने वाला नहीं है? प्रश्नों की झड़ी क्या लगा रखी है? बाहर तो जाकर देखो—क्या हो रहा है? धीरेन्द्र हक्का-बक्का होकर घर से बाहर निकला रात्रि के गहरे अन्धकार में खो गया। बाहर आग धू-धू कर जल रही थी चमकती चिनगारियाँ अत्याचारियों की बर्बरता का दिग्दर्शन कराती हुई अपनी निष्ठा का परिचय दे रही थीं। चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। बीच-बीच में रोने-चीखने की हृदय विदारक आवाजें शान्ति भंग कर रही थीं। धीरेन्द्र किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो, गाँव की सारी गलियों में घूम गया पर बात करने वाला कोई नहीं मिला, जबकि आने-जाने वालों का ताँता बँधा हुआ था किसी को भी बात करने तक की फुरसत नहीं थी। वातावरण आतंक से परिपूर्ण था सहसा नजदीक ही आदमियों की बातचीत सुनाई दी। उधर ही उसने अपने कदम बढ़ाये। बिजली की चमक में देखा—संगीनधारियों का समूह परस्पर विचार-विमर्श कर रहा है। बढ़ते कदम पुनः विपरीत दिशा को बढ़ चले। पल भर में सारी स्थिति समझ गया। दबे पाँव धीरेन्द्र पुनः अपने घर लौटा। क्या देखता है कि सारा घर सूना है। सामान इधर-उधर बिखरा पड़ा। सविता को आवाज लगाते-लगाते सारे घर में घूम गया, पर सविता न मिल सकी। यह सब कब कैसे घटित हो गया? पागल की तरह बाहर दौड़ पड़ा उन्मत्त होकर भागने लगा—भागते-भागते गली के मोड़ पर किसी से जा टकराया। भयमिश्रित वाणी में बोला—कौन हो? महमूद ने धीरेन्द्र की आवाज पहचानते हुये कहा—दादा मेरा तो सर्वस्व लुट गया। दुष्ट सैनिकों ने सारा असबाब लूट लिया, सारे घर में आग लगा दी। जाते-जाते रशीद को पकड़ ले गये। महमूद का हाल सुनकर धीरेन्द्र ने दिल कठोर कर कहा—महमूद, ये पिशाच जनभावनाओं को बन्दूक की गोली से दबाना चाहते हैं। जनक्रान्ति को दबाया नहीं जा सकता है। देखना, बहा खून नया

8

मोतियों की बौछार

जमनालाल शर्मा

* * *

धीरेन्द्र शरणार्थी शिविर के पंक्तिबद्ध लगे तम्बुओं के सामने फैले विशाल प्रांगण में टहल रहा है। बीच-बीच में गुनगुनाने लगता है पर वाणी मुखरित नहीं हो पा रही है। स्वय भी सोच नहीं पा रहा था कि मन का दर्द होठों पर आते-आते क्यों रुक जाता है? हृदय की अन्तर्वेदना आन्तरिक ज्वार की तरह अन्दर ही अन्दर हिलोरें ले रही थीं। परिजनों एवं जन्मभूमि का विद्रोह सहस्त्रों विच्छुओं के एक साथ डंक मारने की तरह मन को दग्ध कर रहा था। शिविर की चहल-पहल से अपने को अलग करते हुये, धीरेन्द्र के अतीत की घटनाओं के दृश्य, आँखों के सामने चित्रपट की तरह आने लगे। बचपन की बाल सुलभ चेष्टाएँ, गाँव की हताई, चारों तरफ शीशम के पेड़ों से आच्छादित घनी छाया, बड़े बुजुर्गों का विश्रामस्थल, हिन्दू-मुस्लिम मेलजोल का अद्भुत अनूठा दृश्य, अतीत की सुखद अनुभूति स्मृतिपटल पर आने लगी। मन एकदम बेचैन हो उठा तारीख तो याद नहीं है, पर दिसम्बर मास की

वाहिनी में भर्ती हो जाऊँ, जिससे एक पंथ दो काज हो जायेंगे। मर गया तो मातृभूमि के ऋण से उऋण हो जाऊँगा और जीवित रहा तो खून का बदला खून से लेकर आत्म-सन्तोष प्राप्त करूँगा। देश को स्वाधीन कराने में मेरा भी तुच्छ सहयोग रहा, तो अपने को धन्य समझूँगा।

× × × ×

धीरेन्द्र फौजी वर्दी में मेजर शमसुद्दीन को सेल्यूट करने के उपरान्त कहता—मेजर साहब, दुश्मन चारों तरफ से घिरा हुआ है। किसी भी सूरत में बचकर नहीं निकल सकता। नाकेबन्दी जबरदस्त कर दी गई है। संचार व्यवस्था को काट दिया गया है। रसद-पूर्ति सम्भव नहीं है। इन घिरे हुये दुश्मनों के सामने सिवाय समर्पण के कोई चारा नहीं है। मेजर ने मुस्कराते हुये कहा—शाबाश, बहादुरों जी-जान से जुटे रहो। आजादी नारों से नहीं, खून से मिलती है। खून के आखिरी कत्तरे तक डटे रहो। आखिरी फतह हमारी होगी। धीरेन्द्र सेल्यूट कर पुनः अपने हैड-क्वार्टर पर लौट पड़ता है।

× × × +

सैनिक अस्पताल में खाट पर घायल सैनिक बेहोश अवस्था में पड़ा है। नर्स थोड़ी-थोड़ी देर के बाद मुँह में पानी डाल रही है। पाँच दिन के बाद मूर्च्छा टूटी। घायल धीरे-धीरे आँखें खोलने लगता है। कभी पुनः बन्द कर देता है। मानों, किसी चिन्तन में लगा है। डाक्टरों ने सन्तोष की साँस ली, घायल के स्वास्थ्य में सुधार हो रहा है। कुछ दिनों के कठोर उपचार के बाद धीरेन्द्र ठीक होने लगा। अब निरन्तर अखबारों से युद्ध के उत्साहवर्द्धक समाचार पढ़ने लगा। विजय के समाचारों से धीरेन्द्र की प्रसन्नता का पारावार न रहा। सैनिक के लिये विजय तो अचूक औषधि है जिससे शीघ्र आरोग्य लाभ होता है। जिस प्रकार थका पथिक अपनी मञ्जिल नजदीक जान चाल तेज कर देता है, उसी प्रकार धीरेन्द्र का उत्साह भी दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। लक्ष्य की प्राप्ति पर अतीत की पीड़ा भूलना स्वाभाविक ही है। अचानक खबर मिलती है कि दुश्मन ने हथियार डाल दिये हैं। सुखद समाचार को सुनकर देश में बिजली की तरह उत्साह की लहर दौड़ पड़ी। नर-नारी खुशी के मारे नाच-कूद रहे थे। हर गली, हर सड़क नारों से गूँज रही थी। सैनिक अस्पताल में आज बड़ी रौनक है। सभी के मन में हर्ष छाया हुआ है। सभी बदला-बदला नजर आ रहा है। हर्ष के आँसू हर किसी की आँखों में देखे

रंग लायेगा। आजादी के पौधे को रक्त रूपी पानी चाहिये जो हमें कल्पना थी वही दुष्टों ने किया। इतनी सान्त्वना बँधाने के बाद भी महमूद के धैर्य का बाँध टूट गया। धीरेन्द्र से चिपक कर सुबकने लगा। इतने में धीरेन्द्र के कान के पास सनसनाती हुई गोली निकल गई। दोनों रात्रि के गहन अन्धकार में खो गये।

× × × ×

कहाँ देश, कहाँ परिजन, अब शरणार्थी शिविर ही रैन बसेरे का एक-मात्र साधन है। मनुष्य में जीने का कितना मोह है? अपने आपसे कितना लगाव है? भविष्य के सुखद स्वप्नों को संजोने की लालसा कहाँ से कहाँ पहुँचा देती है। निराश व्यक्ति के लिये आशा बहुत बड़ा सम्बल है जो एक जीवन शक्ति प्रदान करता है। क्षणभँगुर काया का मोह सभी से वियोग करा देता है। सुरक्षा के सम्बल ने महमूद की स्मृति को पुनः ताजा कर दिया। महमूद की हर बात रह-रह कर याद आने लगी। महमूद मेरा लँगोटिया दोस्त है। एक ही आँगन में खेले-कूदे हैं। गाँव की गली का कण-कण हमसे परिचित है। बचपन की दोस्ती, युवावस्था में सार्थक बन जाती है। महमूद के लिये कितने स्वप्न संजो रखे थे। विधि के क्रूर थपेड़ों ने सभी को मिट्टी में मिला दिये। दोस्ती के बढ़े हाथ प्रेम एवं सद्भावना के लिये कुछ कर गुजरते हैं, पर क्रूर लीला बढ़ते हाथों को समेटने के लिये विवश कर देती है। कहाँ है सविता, जिसका बिछोह मेरे लिये कष्टप्रद होता था। उसे अभी भी खोजते-खोजते मेरी आँखें पथरा गई, पर लेकिन सविता के लिये ही क्यों सोचूँ? खलीफा चौराहे के उस मोड़ पर खड़ी थी, जहाँ से नई मन्जिल के लिये अपना कदम बढ़ाना था लेकिन उसके सारे अरमान मिट्टी में मिल गये। विधि की क्या ही विचित्र विडम्बना है कि मनुष्य सोचता क्या है, परमात्मा कुछ और ही करता है। मेरे और महमूद के घर में ही आग नहीं लगी है। आज देश के हर घर में आग लगी हुई है। चारों तरफ शोले चमक रहे हैं। मैं किस-किस की चिन्ता करूँ। देश की आजादी के लिये तो सभी को कुरबानी देनी होगी। मुझे आज मोम से कोमल हृदय की जरूरत नहीं है। तानाशाही के चंगुल से देश को छुटकारा दिलाने वाले निडर सैनिक का चट्टान सा हृदय चाहिये। जो प्राण-प्रण से जुटे हुये हैं। कितने ही लाल शहीद हो चुके हैं। बहिनें भी देश के लिये अपना सर्वस्व निछावर कर रही हैं। मैं कितना अभागा हूँ जो शरणार्थी शिविर में चहल-कदमी कर रहा हूँ क्यों नहीं लौटकर मुक्ति-

वाहिनी में भर्ती हो जाऊँ, जिससे एक पंथ दो काज हो जायेंगे। मर गया तो मातृभूमि के ऋण से उऋण हो जाऊँगा और जीवित रहा तो खून का बदला खून से लेकर आत्म-सन्तोष प्राप्त करूँगा। देश को स्वाधीन कराने में मेरा भी तुच्छ सहयोग रहा, तो अपने को धन्य समझूँगा।

× × × ×

धीरेन्द्र फौजी वर्दी में मेजर शमसुद्दीन को सेल्यूट करने के उपरान्त कहता—मेजर साहब, दुश्मन चारों तरफ से घिरा हुआ है। किसी भी सूरत में बचकर नहीं निकल सकता। नाकेबन्दी जबरदस्त कर दी गई है। संचार व्यवस्था को काट दिया गया है। रसद-पूर्ति सम्भव नहीं है। इन घिरे हुये दुश्मनों के सामने सिवाय समर्पण के कोई चारा नहीं है। मेजर ने मुस्कराते हुये कहा—शाबाश, बहादुरों जी-जान से जुटे रहो। आजादी नारों से नहीं, खून से मिलती है। खून के आखिरी कतरे तक डटे रहो। आखिरी फतह हमारी होगी। धीरेन्द्र सेल्यूट कर पुनः अपने हेड-क्वार्टर पर लौट पड़ता है।

× × × +

सैनिक अस्पताल में खाट पर घायल सैनिक बेहोश अवस्था में पड़ा है। नर्स थोड़ी-थोड़ी देर के बाद मुँह में पानी डाल रही है। पाँच दिन के बाद मूर्छा टूटी। घायल धीरे-धीरे आँखें खोलने लगता है। कभी पुनः बन्द कर देता है। मानों, किसी चिन्तन में लगा है। डाक्टरों ने सन्तोष की साँस ली, घायल के स्वास्थ्य में सुधार हो रहा है। कुछ दिनों के कठोर उपचार के बाद धीरेन्द्र ठीक होने लगा। अब निरन्तर अखबारों से युद्ध के उत्साहवर्द्धक समाचार पढ़ने लगा। विजय के समाचारों से धीरेन्द्र की प्रसन्नता का पारावार न रहा। सैनिक के लिये विजय तो अचूक औषधि है जिससे शीघ्र आरोग्य लाभ होता है। जिस प्रकार थका पथिक अपनी मञ्जिल नजदीक जान चाल तेज कर देता है, उसी प्रकार धीरेन्द्र का उत्साह भी दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। लक्ष्य की प्राप्ति पर अतीत की पीड़ा भूलना स्वाभाविक ही है। अचानक खबर मिलती है कि दुश्मन ने हथियार डाल दिये हैं। सुखद समाचार को सुनकर देश में बिजली की तरह उत्साह की लहर दौड़ पड़ी। नर-नारी खुशी के मारे नाच रहे थे। हर गली, हर सड़क नारों से गूँज रही थी। सैनिक अस्पताल में आज बड़ी रौनक है। नर्सों के मन में हर्ष छाया हुआ है। नर्सें चलता-फिरता नजर आ रहा है। हर्ष के आँसू हर किसी की आँखों में देखे

9

सबक

अरनी रॉबर्ट्स

* * *

रघुवीर उस समय स्टेशन पर पहुँचा जब गाड़ी चलने ही वाली थी। झट-पट उसने सामान एक डिब्बे में फेंका और स्वयं भी भीड़ के उस घेरे में घुस गया जो दरवाजे से लेकर पूरे कम्पार्टमेंट में थी। अपने सामान की दुर्गति और स्वयं को भीड़ में फंसा पाकर उसे बुरी तरह खिजलाहट हुई। बैठने की बात तो ऐसे में वह स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था। वहाँ तो खड़ा होना भी बड़ा कठिन हो रहा था। पसीने से भरे कपड़ों से आती दुर्गन्ध उसके जी में मिचली सी पैदा करने लगी। आगे-पीछे आने वाले धक्कों से परेशान हो गया। मन ही मन उसने अपने जीवन और जीवन में पैदा होने वाली परेशानियों को गाली दी। गाड़ी चल दी और थोड़ी हवा आई तो उसे कुछ राहत हुई।

"कहाँ जायेंगे आप?" सामने खड़े एक नवयुवक ने पूछा, जो किसी कालेज का विद्यार्थी दिखाई दे रहा था।

उसका जी चाहा वह कह दे 'जहन्नुम में'.....पर उसने धीरे से कहा "कोटा" "कोटा"....बड़ी दूर का सफर है आप बोर हो जायेंगे इस भीड़ में। "क्या करें जी, भाग्य में यह सब-कुछ लिखा है। किस देश में जन्म लिया है, सोचता हूँ कहीं अमेरिका या रूस में जन्मे होते तो कारों में घूमते, ऐशो-आराम की जिंदगी बसर करते....पर यह सब हमारे भाग्य में कहाँ, हमतो जिंदगी जीने के वजाय ढो रहे हैं....लगता है परेशानियों को निबटाने में ही जिन्दगी बीत जाएगी।" रघुबीर ने कहा। कॉलिज स्टूडेन्ट हंसा! रघुबीर को यह हँसी अच्छी नहीं लगी। वह बहुत कम हंसता है। उसके मस्तिष्क में हमेशा परेशानियों का एक बोझ सा रहता है। उसने कभी भी यह नहीं सोचा कि जीने के अलावा इस जिन्दगी में कुछ और भी करना है।

रघुबीर एक क्लर्क है। कुल मिलाकर दो सौ रु. मासिक उसकी आमदनी है। एक बीमार स्त्री है और पाँच बच्चे हैं। उसकी जिन्दगी में सुबह से लेकर परेशानियों और उलझनों की एक चेन सी रहती है। सदैव वह घर, स्त्री और बच्चों की चिंता में खोया रहता है। टाईप राइटर पर चलती हुई उसकी अँगुलियाँ बस एक मशीन की तरह काम किये जाती हैं और अक्सर वह यह सोचता है उसका अपना जीवन भी एक मशीन है। कभी-कभी वह अपने जीवन पर रो उठता है, जब वह देखता है दुनियाँ के रंगों को, चहकते इन्सानों को और खिलखिलाते बच्चों को।....और तभी उसकी आँखों के सम्मुख घूम जाती है रुग्ण स्त्री की खाँसती तस्वीर, लड़ते-झगड़ते गंदे कपड़ों में लिपटे पाँच बच्चों की एक टोली और बिखरा हुआ कमरा।

वह अपनी जिन्दगी को एक फाइल ही समझता है। यह फाइल रोज़ सुबह खुल जाती है और रात बहुत देर गये बंद होती है। इस दौरान उस फाइल में जाने कितनी लकीरें बनती हैं, जाने कितनी काटा-फाँसी होती है। बस वह जानता है उसकी जिंदगी एक फाइल है।

कोई बड़ा स्टेशन आ गया। काफी लोग उतर गये वहाँ। कम्पार्टमेंट में कुछ स्थान हो गया। खिड़की के पास उसे थोड़ा सा बैठने का स्थान मिल गया। चैन की साँस ली उसने। उसे लगा जैसे वह किसी घुटे-घुटे माहौल से निकलकर खुली हवा में आ गया हो। कम्पार्टमेंट में उसने निगाह फेंकी। कुछ लोग सीटों पर सोते हुये नजर आये। क्रोध का उबाल उसके अन्दर उठा और उसका जी चाहा वह एक-एक सोने वाले को खदेड़कर उठा दे और

वह एक बहुत महत्वाकांक्षी युवक था। सब उसके व्यक्तित्व से प्रभावित थे। कई प्रतिभायें भी उसमें थीं। पढ़ाई में भी वह सदैव अच्छा रहा था। कॉलिज में इसका अपना एक अलग व्यक्तित्व था और उसका इतना प्रभाव था लोग उसकी बातों को मानते थे। गलत रास्तों पर वह नहीं चला था और न उसे गलत कार्य पसंद थे। सीमित दायरों वाली जिंदगी में वह मस्त था। वह सदैव एक उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करता था। वह सोचता था—एक दिन वह आई. ए. एस. ऑफिसर बनेगा, उसकी अपनी दुनियाँ होगी—जिसमे दुःख नाम की कोई चीज नहीं आने पायेगी। लोग उसको सम्मान देंगे, और वह हर इन्सान से प्यार करेगा, सदैव अच्छाईयों को गले लगायेगा। उसकी दुनियाँ में—जीवन प्रेम और स्नेह का आधिक्य होगा।

बहुत अच्छे दिन थे वह। तभी उसके जीवन में एक दोस्त आया जीवनलाल। जीवनलाल एक भ्रष्ट चरित्र का और दुष्ट प्रकृति का लड़का था। रघुवीर के जीवन से उसके जीवन की कोई बात मेल नहीं खाती थी फिर भी रघुवीर को उसमें एक विशेष आकर्षण दिखाई देता था और वह मित्र बन गये थे। दाँत काटी रोटी हो गये थे।

रघुवीर ने सहसा ही जैसे अच्छाईयों से आँखे मीच लीं, वो कार्य जिन्हें वह बुरा समझता था उसे उनमे रस आने लगा। शराब, जुआ और वेश्यावृत्ति जीवनलाल के अंग थे और जल्दी ही रघुवीर भी इन सब बुराईयों में फंस गया। एक ऐसा अजीब सा जादू था जीवनलाल की बातों मे कि जो कुछ वह रघुवीर से कहता वह उसे करने को तैयार हो जाता। रघुवीर की जिन्दगी में अंधकार भर गया। पढ़ाई चौपट हो गई, आदर्श चूर-चूर होकर मिट्टी में मिल गये।

रघुवीर को उसके पिताजी ने बहुत समझाया, पर वह रास्ते पर नहीं आया और इसी बीच वह छाती पर बोझ लेकर इस दुनियां से विदा हो गये। भाईयों ने उसे घर से निकाल दिया।....और एक दिन जब उसे अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ तो वह रो पड़ा अपनी हालत पर। उस दिन पहिली बार उसे पतन का अहसास हुआ और पता चला कि जीवनलाल ने उसके जीवन में जहर भर दिया था।....लेकिन बहुत देर हो चुकी थी।....वह किनारे को छोड़कर मँझधार मे आ गया था।....उसने जीवन को छोड़ दिया। बुरे कार्यों

को भी छोड़ देने की कसम खाई। और बहुत कुछ करना चाहा, पर वह कुछ नहीं कर पाया। जो कुछ भी करना चाहता उसमें उसे निराशा मिलती। झुँझला उठा वह असफलताओं से। परेशानियाँ और मुसीबतें उसे जर्जर बनाती रहीं। बड़ी कठिनाई से उसे एक फैक्ट्री में नौकरी मिली, थोड़ी बहुत टाइपिंग वह जानता था।

लेकिन उसकी घिसटती हुई जिन्दगी में कोई बदलाव नहीं आया। उसका विवाह हुआ, पाँच बच्चे हुये लगातार। रोज नई-नई परेशानियाँ उसके जीवन में अमर बेल की तरह लिपटती चली गई। जितना वह जीवन को संवारना चाहता था, वह उतना ही बिगड़ता गया। उसकी पत्नी रूग्ण हो ही गई। सौ में सात प्राणियों का पेट नहीं भरता, पत्नी का इलाज नहीं करा पाता, बच्चों को अच्छे स्कूल नहीं भेज पाता।''' उसने ५० रु. पर एक पार्ट टाइम नौकरी की, पर इससे विशेष लाभ होता दिखाई नहीं दिया और फिर वह सोचता रहा अपनी जिन्दगी के बारे में। फिर वह ट्रेन की खिड़की की चौखट पर सिर रखे ही सो गया।

कोटा स्टेशन पर ही उसकी नींद टूटी। वह हड़बड़ाकर स्टेशन पर उतरा। रात का एक बजा था उस वक्त। ठंड बहुत बढ़ चुकी थी। उसने मफलर अपने कानों पर अच्छी प्रकार से लपेट लिया। उसके पास एक बिस्तरा और ट्रंक था और उसको काफी दूर जाना रेल्वे कॉलोनी में जाना था। बहुत से कुली उसके पास जमा हो गये। उसने कॉलोनी चलने को कहा। सभी कुलियों ने मना कर दिया क्योंकि एक दूसरी ट्रेन आने वाली थी और वे कॉलोनी जाने के बजाय गाड़ी से सामान उतारना पसंद करते थे; क्योंकि उनको जितना कॉलोनी जाने से मिलता, उतना यहीं मिल जाता तो वे भला क्यों इतनी दूर जाते!''''रिक्शे और तांगे वहाँ जाते नहीं थे क्योंकि ब्रिज पार करना होता था। और दूसरा रास्ता बहुत दूर था।''' ऊबड़-खाबड़ और कच्चा।''''''''

सभी कुली चले गये गये। तभी ठंड से ठिठुरता एक दुबला और बूढ़ा कुली उसके सामने आकर खड़ा हो गया। उसकी आँखों में एक विशेष अनुरोध था। वह बोला—"मैं चलूँगा हजूर कॉलोनी में''''।"

"तुम?"''''उठा पाओगे इतना सामान?' आश्चर्य से पूछा रघुवीर ने। "जिन्दगी भर सामान उठाया है, अब जिस्म बूढ़ा हो गया तो क्या बाबू,

वह एक बहुत महत्वाकांक्षी युवक था। सब उसके व्यक्तित्व से प्रभावित थे। कई प्रतिभायें भी उसमें थीं। पढ़ाई में भी वह सदैव अच्छा रहा था। कॉलेज में इसका अपना एक अलग व्यक्तित्व था और उसका इतना प्रभाव था लोग उसकी बातों को मानते थे। गलत रास्तों पर वह नहीं चला था और न उसे गलत कार्य पसंद थे। सीमित दायरों वाली जिंदगी में वह मस्त था। वह सदैव एक उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करता था। वह सोचता था—एक दिन वह आई. ए. एस. ऑफिसर बनेगा, उसकी अपनी दुनियाँ होगी—जिसमें दुःख नाम की कोई चीज नहीं आने पायेगी। लोग उसको सम्मान देंगे, और वह हर इन्सान से प्यार करेगा, सदैव अच्छाईयों को गले लगायेगा। उसकी दुनियाँ में—जीवन प्रेम और स्नेह का आधिक्य होगा।

बहुत अच्छे दिन थे वह। तभी उसके जीवन में एक दोस्त आया जीवनलाल। जीवनलाल एक भ्रष्ट चरित्र का और दुष्ट प्रकृति का लड़का था। रघुवीर के जीवन से उसके जीवन की कोई बात मेल नहीं खाती थी फिर भी रघुवीर को उसमें एक विशेष आकर्षण दिखाई देता था और वह मित्र बन गये थे। दाँत काटी रोटी हो गये थे।

रघुवीर ने सहसा ही जैसे अच्छाईयों से आँखें मीच लीं, वो कार्य जिन्हें वह बुरा समझता था उसे उनमें रस आने लगा। शराब, जुआ और वेश्यावृत्ति जीवनलाल के अंग थे और जल्दी ही रघुवीर भी इन सब बुराईयों में फंस गया। एक ऐसा अजीब सा जादू था जीवनलाल की बातों मे कि जो कुछ वह रघुवीर से कहता वह उसे करने को तैयार हो जाता। रघुवीर की जिन्दगी में अंधकार भर गया। पढ़ाई चौपट हो गई, आदर्श चूर-चूर होकर मिट्टी में मिल गये।

रघुवीर को उसके पिताजी ने बहुत समझाया, पर वह रास्ते पर नहीं आया और इसी बीच वह छाती पर बोझ लेकर इस दुनियां से विदा हो गये। भाईयों ने उसे घर से निकाल दिया।''''और एक दिन जब उसे अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ तो वह रो पड़ा अपनी हालत पर। उस दिन पहिली बार उसे पतन का अहसास हुआ और पता चला कि जीवनलाल ने उसके जीवन में जहर भर दिया था।''''लेकिन बहुत देर हो चुकी थी।''''वह किनारे को छोड़कर मँझदार में आ गया था।''''उसने जीवन को छोड़ दिया। बुरे कार्यों

को भी छोड़ देने की कसम खाई। और बहुत कुछ करना चाहा, पर वह कुछ नहीं कर पाया। जो कुछ भी करना चाहता उसमें उसे निराशा मिलती। झुँझला उठा वह असफलताओं से। परेशानियाँ और मुसीबतें उसे जर्जर बनाती रहीं। बड़ी कठिनाई से उसे एक फैक्ट्री में नौकरी मिली, थोड़ी बहुत टाइपिंग वह जानता था।

लेकिन उसकी घिसटती हुई जिन्दगी में कोई बदलाव नहीं आया। उसका विवाह हुआ, पाँच बच्चे हुये लगातार। रोज नई-नई परेशानियाँ उसके जीवन में अमर बेल की तरह लिपटती चली गई। जितना वह जीवन को संवारना चाहता था, वह उतना ही बिगड़ता गया। उसकी पत्नी रुग्ण हो ही गई। सौ में सात प्राणियों का पेट नहीं भरता, पत्नी का इलाज नहीं करा पाता, बच्चों को अच्छे स्कूल नहीं भेज पाता।··· उसने ५० रु. पर एक पार्ट टाइम नौकरी की, पर इसमें विशेष लाभ होना दिखाई नहीं दिया और फिर वह सोचता रहा अपनी जिन्दगी के बारे में। फिर वह ट्रेन की खिड़की की चौखट पर सिर रखे ही सो गया।

कोटा स्टेशन पर ही उसकी नींद टूटी। वह हड़बड़ाकर स्टेशन पर उतरा। रात का एक बजा था उस वक्त। ठंड बहुत बढ़ चुकी थी। उसने मफलर अपने कानों पर अच्छी प्रकार से लपेट लिया। उसके पास एक बिस्तरा और ट्रंक था और उसको काफी दूर जाना रेल्वे कॉलोनी में जाना था। बहुत से कुली उसके पास जमा हो गये। उसने कॉलोनी चलने को कहा। सभी कुलियों ने मना कर दिया क्योंकि एक दूसरी ट्रेन आने वाली थी और वे कॉलोनी जाने के बजाय गाड़ी में सामान उतारना पसंद करते थे; क्योंकि उनको जितना कॉलोनी जाने से मिलता, उतना यहीं मिल जाता तो वे भला क्यों इतनी दूर जाते!····रिक्शे और तांगे वहाँ जाते नहीं थे क्योंकि ब्रिज पार करना होता था। और दूसरा रास्ता बहुत दूर था।··· ऊबड़-खाबड़ और कच्चा।········

सभी कुली चले गये। तभी ठंड से ठिठुरता एक दुबला और बूढ़ा कुली उसके सामने आकर खड़ा हो गया। उसकी आँखों में एक विशेष अनुरोध था। वह बोला—"मैं चलूँगा हुजूर कॉलोनी में····।"

"तुम ?"····'उठा पाओगे इतना सामान ?' आश्चर्य से पूछा रघुवीर ने। "जिन्दगी भर सामान उठाया है, अब जिस्म बूढ़ा हो गया तो क्या बाबू,

वह एक बहुत महत्वाकांक्षी युवक था। सब उसके व्यक्तित्व से प्रभावित थे। कई प्रतिभायें भी उसमें थीं। पढ़ाई में भी वह सदैव अच्छा रहा था। कॉलेज में इसका अपना एक अलग व्यक्तित्व था और उसका इतना प्रभाव था लोग उसकी बातों को मानते थे। गलत रास्तों पर वह नहीं चला था और न उसे गलत कार्य पसंद थे। सीमित दायरों वाली जिंदगी में वह मस्त था। वह सदैव एक उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करता था। वह सोचता था—एक दिन वह आई. ए. एस. ऑफिसर बनेगा, उसकी अपनी दुनियाँ होगी—जिसमे दुःख नाम की कोई चीज नहीं आने पायेगी। लोग उसको सम्मान देंगे, और वह हर इन्सान से प्यार करेगा, सदैव अच्छाईयों को गले लगायेगा। उसकी दुनियाँ में—जीवन प्रेम और स्नेह का आधिक्य होगा।

बहुत अच्छे दिन थे वह। तभी उसके जीवन में एक दोस्त आया जीवनलाल। जीवनलाल एक भ्रष्ट चरित्र का और दुष्ट प्रकृति का लड़का था। रघुवीर के जीवन से उसके जीवन की कोई बात मेल नहीं खाती थी फिर भी रघुवीर को उसमें एक विशेष आकर्षण दिखाई देता था और वह मित्र बन गये थे। दाँत काटी रोटी हो गये थे।

रघुवीर ने सहसा ही जैसे अच्छाईयो से आँखें मीच लीं, जो कार्य जिन्हें वह बुरा समझता था उसे उनमें रस आने लगा। शराब, जुआ और वेश्यावृत्ति जीवनलाल के अंग थे और जल्दी ही रघुवीर भी इन सब बुराईयों में फंस गया। एक ऐसा अजीब सा जादू था जीवनलाल की बातों में कि जो कुछ वह रघुवीर से कहता वह उसे करने को तैयार हो जाता। रघुवीर की जिन्दगी में अंधकार भर गया। पढ़ाई चौपट हो गई, आदर्श चूर-चूर होकर मिट्टी में मिल गये।

रघुवीर को उसके पिताजी ने बहुत समझाया, पर वह रास्ते पर नहीं आया और इसी बीच वह छाती पर बोझ लेकर इस दुनियां से विदा हो गये। भाईयों ने उसे घर से निकाल दिया।....और एक दिन जब उसे अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ तो वह रो पड़ा अपनी हालत पर। उस दिन पहिली बार उसे पतन का अहसास हुआ और पता चला कि जीवनलाल ने उसके जीवन में जहर भर दिया था।....लेकिन बहुत देर हो चुकी थी।....वह किनारे को छोड़कर मँझधार में आ गया था।....उसने जीवन को छोड़ दिया। बुरे कार्यों

को भी छोड़ देने की कसम खाई। और बहुत कुछ करना चाहा, पर वह कुछ नहीं कर पाया। जो कुछ भी करना चाहता उसमें उसे निराशा मिलती। झुंझला उठा वह असफलताओं से। परेशानियाँ और मुसीबतें उसे जर्जर बनाती रहीं। बड़ी कठिनाई से उसे एक फैक्ट्री में नौकरी मिली, थोड़ी बहुत टाईपिंग वह जानता था।

लेकिन उसकी विसटती हुई जिन्दगी में कोई बदलाव नहीं आया। उसका विवाह हुआ, पाँच बच्चे हुये लगातार। रोज नई-नई परेशानियाँ उसके जीवन में अमर बेल की तरह लिपटती चली गई। जितना वह जीवन को संवारना चाहता था, वह उतना ही बिगड़ता गया। उसकी पत्नी रूग्ण हो ही गई। सौ में सात प्राणियों का पेट नहीं भरता, पत्नी का इलाज नहीं करा पाता, बच्चों को अच्छे स्कूल नहीं भेज पाता।''' उसने ५० रु. पर एक पार्ट टाइम नौकरी की, पर इसमें विशेष लाभ होता दिखाई नहीं दिया और फिर वह सोचता रहा अपनी जिन्दगी के बारे में। फिर वह ट्रेन की खिड़की की चौखट पर सिर रखे ही सो गया।

कोटा स्टेशन पर ही उसकी नींद टूटी। वह हड़बड़ाकर स्टेशन पर उतरा। रात का एक बजा था उस वक्त। ठंड बहुत बढ़ चुकी थी। उसने मफलर अपने कानों पर अच्छी प्रकार से लपेट लिया। उसके पास एक बिस्तरा और ट्रंक था और उसको काफी दूर जाना रेल्वे कॉलोनी में जाना था। बहुत से कुली उसके पास जमा हो गये। उसने कॉलोनी चलने को कहा। सभी कुलियों ने मना कर दिया क्योंकि एक दूसरी ट्रेन आने वाली थी और वे कॉलोनी जाने के बजाय गाड़ी से सामान उतारना पसंद करते थे; क्योंकि उनको जितना कॉलोनी जाने से मिलता, उतना यहीं मिल जाता तो वे भला क्यों इतनी दूर जाते !''''रिक्शे और तांगे वहां जाते नहीं थे क्योंकि ब्रिज पार करना होता था। और दूसरा रास्ता बहुत दूर था।''' ऊबड़-खाबड़ और कच्चा।''''''''

सभी कुली चले गये। तभी ठंड से ठिठुरता एक दुबला और बूढ़ा कुली उसके सामने आकर खड़ा हो गया। उसकी आंखों में एक विशेष अनु-रोध था। वह बोला—"मैं चलूँगा हजूर कॉलोनी में''''।"

"तुम ?"''''उठा पाओगे इतना सामान ?' आश्चर्य से पूछा रघुवीर ने। "जिन्दगी भर सामान उठाया है, अब जिस्म बूढ़ा हो गया तो क्या बाबू,

10

"अपोली"

नसरुद्दीन

* * *

अरी ओ छिनाल राँड ! यों तुम्बे की तरह मुँह फुलाये रखोगी तो कोई ग्राहक पंखी तो लेना दूर रहा, तेरी तरफ देखेगा भी नहीं। घर से रवाना होते ही उपला को माँ की कर्कश ध्वनि सुनाई दी। उपला एक बारगी सहम गई, वह माँ के सुभाव से बड़बड़ाने लगी, "बाबू, हे बाबू, ये सुन्दर पंखियाँ दस पैसे की एक है। रे, बाबू !" फिर सामने कोई ग्राहक नहीं पाकर वह उदास होकर रह गई।

वह पल प्रतिपल बढ़े जा रही थी। अपनी जानी-मानी नित्य की मन्जिल की ओर। पूरे रास्ते में उसे अपने बूढ़े बापू के ये शब्द याद आ रहे थे, "बेटी उपला, आज गोश्त खाने को मन करता है रे, थोड़ी बिक्री ज्यादा करके एक पाव गोश्त, अदरख, आदि लेती आना मेरी बिटोड़ी !"

"हाँ बापू, भगवान ने चाहा तो जरूर लाऊँगी।" उपला ने कहने

को यह बात कह तो दी, लेकिन दरवाजे के पास खड़ी अपनी माँ शकुन्तला को देखा तो वह सिर से पाँव तक काँप कर रह गई।

उसके विचारों का ताँता बच्चों की एक टोली ने तोड़ा जो उसका नाम उपला से अपोली कर रहे थे। उपला एक बहुत ही सुन्दर लम्बी, गोरी लड़की थी। कहते हैं कि इसकी माँ ने खेत में काम करते-करते इसे उपलों के ढेर के पास जन्म दिया था। तभी से मुहल्ले के सभी लोग उसको उपला नाम की संज्ञा देने लगे थे। आज यह नाम भी उसकी तीव्र चाल-ढाल के कारण अपोली में परिवर्तित होता चला जा रहा था। उस समय उपला केवल दो वर्ष की थी। अचानक एक दिन उसकी माँ शान्ति की तबियत ज्यादा खराब हो गई थी। सुना था, शहर के ठाकुर रामप्रसाद जी का ज्येष्ठ पुत्र रामकरण डाक्टरी पढ़कर आया है। उसके बापू उपला को शान्ति की खाट के पास छोड़ गये और स्वयं ठाकुर साहब की हवेली की ओर भागा। गन्दी बस्ती में बने उस छप्पर के मकान से अनभिज्ञ उपला दीवारों में बने छोटे-छोटे छिद्रों से देख जा रही थी। तभी उसकी माँ ने एक बारगी आँखें खोल दीं। एक दृष्टि उपला की तरफ डाली थी फिर वे आँखें सदा के लिए उपला से रुष्ट हो गईं। उपला का बापू डाक्टर साहब की अटेची थामे दरवाजे के पास आ खड़ा हुआ, उपला को आज भी याद है। उस समय वह दहाड़ मार मार कर रोने लगी थी। डाक्टर साहब ने शान्ति पर एक दृष्टि डाली और पीछे को मुड़ गया। अटेची कल्लू ने बाबा से लेते हुए कहा, "अफसोस है कल्लू बाबा, शान्ति चल बसी।" कल्लू उपला को गोद में थामे हुए फफक-फफक कर रो पड़ा।

कल्लू पर दुःख के पहाड़-से टूट पड़े थे। उसी दिन से, दिन काटे नहीं कटते। उपला की देख-भाल व मजदूरी दोनों साथ सम्भव नहीं थी। एक दिन मुहल्ले का बदमाश और खूँखार आदमी शानो कल्लू बाबा के घर आ धमका। कल्लू बाबा उस समय रोटी बना रहा था। अरे! कल्लू बाबा, क्यों तुम इतनी तकलीफ किया करते हो, कहो तो तुम्हारी नन्हीं बच्ची के लिये एक माँ का बन्दोबस्त कर दूँ। "नहीं बेटे शानो, अब क्या करना है रे, बीबी लाके! लेकिन इस बच्ची की तरफ देखता हूँ तो……" कल्लू बाबा ने बड़ी चालाकी से दिल की बात कह दी। ठीक इसके एक हफ्ते बाद शानो ने कल्लू बाबा के लिए बीबी लादी नाम था उसका शकुन्तला, यानी उपला की विमाता। उपला के लिए वह पूर्णतः विमाता ही साबित हुई। कल्लू

बाबा रोज जंगल में जाता और कच्चे बाँस और नारियल के पेड़ की शाखायें काट कर लाता। शकुन्तला उनको रंग कर तरह-तरह की सुन्दर पंखियाँ बनाती। उन पंखियों की बिक्री शकुन्तला खुद करती। उपला की जिन्दगी के खट्टे-मीठे दिन अपनी रफ्तार से गुजरे जा रहे थे। अचानक उस दिन शकुन्तला को जोरदार ज्वर आ गया था। उपला पंखियों की माला बाँह में डाल कर चल दी स्टेशन की ओर। आज गर्मी कुछ अधिक थी। सभी आदमी गर्मी से परेशान हो रहे थे। "ए पंखी ले लो, बाबू पंखी, दस पैसे की एक पंखी," उपला बिना किसी ग्राहक की चिन्ता किए खड़ी गाड़ी के तीन चार चक्कर काट गई। फिर क्रम से हर एक डिब्बे में पंखे बेचने लगी। पन्द्रह मिनट के अन्दर उपला ने पचासों पंखे बेच डाले। दूर प्लेटफॉर्म पर खड़े एक नि:सन्तान दम्पत्ति इस नन्हीं गुड़िया की चंचलता की ओर उन्मुख थे।

"कौन ?" उपला के घर की दहलीज में पैर रखते ही शकुन्तला ने कराहते हुए पूछा। "मैं हूँ चाची उपला," शकुन्तला उपला की ओर देखे बिना ही बोल पड़ी, "अरी रांड कहीं की, पंखियाँ बेचने नहीं गई क्या ? अगर नहीं जावेगी तो खावेगी क्या, मेरा सिर !" "नहीं चाची, ये लो पाँच रुपये मैंने पचासों पंखे बेच दिये हैं।" शकुन्तला शायद अपनी गलती पर पछता रही थी। तभी तो वह आँखें बन्द किए हुए कुछ देर बुदबुदाती रही।

उस बात को आज पूरे नौ वर्ष बीत चुके होंगे। उसी दिन से पंखियों के बेचने का कार्य उपला के जिम्मे बन गया था। सारी कोशिशों के बावजूद रोज दस-पंद्रह पंखियों की औसत बिक्री रह गई थी। उपला परेशान थी अपनी तकदीर से व शकुन्तला परेशान थी उपला से ! तभी तो वह आये दिन कहती, "अरी हरामजादी, जब तक तू कमा कर नहीं लाएगी तो इस घर में तेरा काला मुँह करूँगी भी तो कैसे ?" उपला माँ की ऐसे कर्कश तानों की अभ्यस्त हो चुकी थी। कभी-कभी दिल भर आने पर वह एकान्त में बैठ कर आँसू बहा कर अपने मन का बोझ हलका कर लिया करती थी। इसके सिवाय चारा भी क्या था।

पिछले नौ वर्षों से अनेकों यात्रियों ने उपला को सदा पंखियाँ बेचते ही देखा था।

खूबसूरत गरीब उपला को हर नजर भूखी और ललचाई लपट से चुभती ! बस, यही कारण था कि वह कम तादाद में पंखियाँ बेचने लगी

11

मौत के रिश्ते

अफजल खाँ 'अफजल'

* * *

कड़ाके की सर्दी फिर रात के ग्यारह बजे का समय। इक्के-दुक्के आदमी ही इधर से उधर आते जाते दिखाई दे रहे हैं। साइकिल के पैडिलों पर घर जल्दी पहुँचने का भार लादे तेज गति से विचारों में खोया, जानी-पहचानी सड़कों को पार करता बढ़ा जा रहा हूँ। अचानक एक जोरदार झटका लगा और मैं परिस्थिति को समझूँ, तब तक मैं औंधे मुँह नीचे था और साइकिल मेरे ऊपर। जल्दी ही अपने को ठीक-ठाक किया। पास ही एक साहब औंधे मुँह अब भी पड़े हुए थे। सारी परिस्थिति समझ में आ गई। दिमाग की नसें तन गई और दो-चार भद्दी गालियाँ उन औंधे मुँह पड़े साहब पर झाड़ दीं। साइकिल उठाई और उस पर बैठूँ; तभी मेरी नजरें साइकिल के उस पहिये पर अटक गई जो किसी रेखागणित की कापी में बने त्रिभुज का मॉडल बन गया था। करीब दो मील घर का रास्ता और कड़ाके की सर्दी ऊपर से साइकिल के बोझ का विचार एक ऐसी चिंगारी मेरे दिमाग़ को लगा गया कि मैं तिलमिला उठा।

मैं यह सोच ही रहा था कि एक चका-चौंध करने वाली रोशनी आँखों से आ टकराई। अनजाने ही मेरा हाथ ऊपर उठ गया और रोशनी गई। एक भारी भरकम आवाज कानों से आ टकराई--क्या बात है। ये क्या है। टैक्सी का आभास पा मैंने चैन की साँस ली। दिलीप बाबू के हाथों को पकड़ते हुए ड्राइवर को सहयोग के लिये इशारा कर दिया। ड्रा ने एक शंका की नजर हम दोनों पर फेंकी और वह टैक्सी को स्टार्ट कर च भी जाता अगर मैं हँसकर शराबी का अभिनय न बनाता। ड्राइवर भद्दी हँसी हँसता हुआ नीचे आया और दिलीप बाबू की दोनों टाँगों को पकड़ हुए बोला--लो उठाओ। ना जाने कैसे-कैसे लोगों से पाला पड़ता है। जब दिली बाबू को पिछली सीट पर लिटा दिया तो मैंने अपनी टूटी साइकिल को कार के ऊपरी झँगले पर पटक दी। ड्राइवर ने आना-कानी की पर विवशता और नो के लालच से बड़बड़ाता टैक्सी को स्टार्ट करने लगा।

मैंने सेठजी की हवेली का पता ड्राइवर को कह दिया। एक अचरज भरी नजर ड्राइवर ने मुझ पर डाली और टैक्सी आगे बढ़ गई।

टैक्सी सेठ दीना नाथ के बंगले की ओर बढ़ी जा रही थी तभी दिलीप बाबू फिर बड़बड़ाये--मीना अगर तुम्हें कुछ हो गया या तुम मुझे नहीं मिलीं तो इस हरे-भरे खानदान को तबाह कर दूँगा। उन सबका खून कर दूँगा जिन्होंने तुझको मुझसे छीना है। एक अज्ञात भय मेरे मन में छा गया। इस हालत में दिलीप बाबू का घर जाना ठीक नहीं। ना जाने नशे में क्या घटनायें उपस्थित हो जायें और बाप बेटे में जिन्दगी भर के लिये ठन जाये। मैंने टैक्सी को आगे के मोड़ पर ही रुकने का आदेश दे दिया। वहीं पास ही मेरा मकान था।

रात के करीब ३ बजे हैं। मैं अपने फर्श पर करवटें बदल रहा हूँ। फर्श की ठंडक मुझे सोने नहीं दे रही है और मन में एक जंजाल सा आ रहा है उन साहबजादे पर जो मेरे बिस्तर में आराम से पलंग पर सो रहे हैं।

अचानक दिलीप बाबू हड़बड़ा कर उठ बैठे और अंधेरे के धुँधले प्रकाश में इधर-उधर देखने लगे। मैं उठा और लाइट का बटन ऑन कर दिया। दिलीप बाबू एक दम चौंक से गये। मैंने दिलीप बाबू के चेहरे को ध्यान से देखा जिसमें नशे की मात्रा कई प्रतिशत कम हो गई थी। यकायक दिलीप बाबू चिल्ला पड़े--कौन हो तुम? मैं कहाँ हूं? आखिर ये सब क्या है? मैं

मुस्कराया और जवाब दिया—तुम अपने शहर में, अपने ही मोहल्ले में एक लेखक के कमरे में हो। तुम्हें नशे की हालत में घर ले जाना मैंने उचित नहीं समझा और यहाँ ले आया। आराम करो और सुबह घर चले जाना। अपने दोनों हाथों से सर को दबाये दिलीप बाबू अस्पष्ट शब्दों में कह उठे—अब क्या घर जाऊँगा मेरे अनजान हमदर्द, मेरे भाई। और उनके गालों पर आँसुओं की बूँदें बह चलीं। एक आस भरी नजर उन्होंने मुझ पर डाली और बोले—तुम इसी मोहल्ले के निवासी हो। यहाँ रहते आये हो। क्या तुम मेरी मीना को नहीं जानते? क्या हमारे मुनीम भोला शंकर जी की बेटी को नहीं जानते? एक धुँधली सी तस्वीर मेरे मस्तिष्क में उतर आई। एक सांवली, पतली दुबली, बड़ी-बड़ी आँखों वाली सत्तरह अठारह वर्षीय तरुणी, जो अपने पिता के साथ सेठजी के यहाँ आती-जाती मेरे कमरे से दिखाई देती थी। जिसे देखकर एक बार मेरे मन में भी प्यार या वासना की हूक उठी थी और पता लगाने पर उसका नाम मालूम हुआ था—मीना……मीना……और यहाँ आकर मेरी विचारधारा टूट गई और समझ में आ गई मुनीमजी पर सेठजी द्वारा झूठा चोरी का इल्जाम लगाकर नौकरी से हटा देने व इस शहर को छोड़ देने पर मजबूर करने की सारी दास्तान। मैं चिल्ला पड़ा—हाँ-हाँ-मैं जानता हूँ तुम्हारी मीना को। तुम्हारे पिताजी को शायद ये सब मालूम हो गया था इसलिए उन्होंने मुनीम को नौकरी से हटाकर उन्हें उनके गाँव भेज दिया। मैंने देखा दिलीप बाबू की आँखों में एक चमक-सी आ गई। वे एक झटके से खाट से उठ पड़े। तुम्हारे अहसानों का बदला मैं जिन्दगी भर नहीं भूलूँगा मेरे दोस्त। मैं जानता हूँ उसके गांव का पता। मैं अभी जाकर अपनी बिछुड़ी मीना से मिलता हूँ। यह कहते हुए दिलीप बाबू कमरे से निकल पड़े।

दिलीप बाबू के जाने के बाद ना जाने कौन-सी एक अज्ञात प्रेरणा मुझे मिली कि पूरे रात के जगेटे तथा सर्दी के बावजूद कपड़े पहन तथा एक शाल शरीर पर डाल मैं भी कमरे से बाहर आ गया। देखा दिलीप बाबू स्टेशन जाने वाली सड़क की ओर बढ़े जा रहे हैं। मैंने भी अपने कदम उस ओर बढ़ा दिये। जब मैं स्टेशन पहुँचा दिलीप बाबू बुकिंग गेट से टिकट खरीद कर प्लेटफार्म की ओर जहां मारवाड़ मेल जाने की तैयारी में खड़ी थी, बढ़ गये। मैं प्लेटफार्म के बाहर से ही दिलीप बाबू को तथा उनकी उमंग व प्यार के उत्साह को निहारे जा रहा था।

दिलीप बाबू जाते ही फाटक खोल डिब्बे में घुस पड़े। सामने ही एक औरत अपनी गोद में बच्चा लिये बैठी थी। दिलीप बाबू बैठने की सीट होते हुए भी उस औरत के सामने खड़े हुए थे। डिब्बे में जल रहे बल्ब के धुँधले प्रकाश में मुझे दूर से दिखाई दे रहा था कि दिलीप बाबू बड़े ही पागलपने से बातें कर रहे हैं। औरत बार-बार अपनी साड़ी के पल्लू को अपनी आँखों से छुआ रही थी। वे क्या बातें कर रहे थे यह मैं नहीं सुन पा रहा था। रेल मुझ से काफी दूर पर थी। इतने में दिलीप बाबू को ना जाने क्या सूझा उस औरत के गोद में खेल रहे बच्चे को, वह बच्चा था या बच्ची यह जानने की ओर मेरा ध्यान ही नहीं गया, अपनी गोद में उठाया और उस बच्चे के अनगिनत चुम्बन दे अपना पर्स उसके हाथों में दे; उसकी माँ को लौटा दिया। इतने में एक युवक ने हाथ में दो चाय की कुल्हड़ लिये उसी डब्बे में प्रवेश किया। उस औरत ने अपना चेहरा घूँघट से ढक लिया। अनायास इन्जन की कर्कश सीटी ने मेरा ध्यान कुछ समय के लिये मोड़ दिया। कुछ ही समय के पश्चात रेल के डिब्बे धीमी गति से मेरी नजरों के सामने से खिसकते नजर आये। दिलीप बाबू एक हारे जुआरी की तरह लड़खड़ाते प्लेटफार्म के बाहर आते दिखाई दिये। मुझे देखते ही सुबक पड़े दिलीप बाबू—मीना वाकई ही मेरे लिए मर गई दोस्त। मीना मर गई, मैं कुछ कहूँ इससे पहले ही दिलीप बाबू पागलों की भांति दौड़ते हुए मेरी नजरों से ओझल हो गये।

मैंने एक ताँगा किया और घर आ गया जागरण के कारण पलग पर लेटते ही आँख लग गई। जब आँख खुली तो सूरज काफी ऊपर चढ़ आया था। दिन के करीब ढाई बजे थे। बाहर की चिल्लाहट को सुन कमरे से बाहर आ गया। पास ही के पड़ौसी बंगाली बाबू चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे—कल ही तो बेचारा बिलायत से आया था। मैं सन्न सा रह गया। वे कहे जा रहे थे—पर जहर खाने से पहले किसी को कुछ कहा भी तो नहीं। कोई चिट्ठी-पत्री भी तो नहीं छोड़ गया। भरी जवानी में आत्म हत्या कर अपने भगवान स्वरूप बाप को कलंक लगा गया। राम-राम ऐसी औलाद से तो बेऔलाद रहना ही अच्छा। मैं अपनी दिमाग की नसों को फटने से बचाने के लिये सर को दोनों हाथों से दबा लेता हूं और दौड़कर पलंग पर गिर पड़ता हूं।

ना जाने कब शाम हो जाती है। शाम का अखबार देने वाला खिड़की से ही अखबार फेंक जाता है। अखबार के मुखपृष्ठ पर ही बड़े-बड़े अक्षरों में

छपा था 'जाको राखे साइयाँ'। अखबार उठा लेता हूँ शायद दिलीप बाबू के बचने की खबर हो और पढ़ने लगता हूँ---सुबह चार बजे जाने वाली मारवाड़ मेल शहर से तीस किलोमीटर जाने के बाद एक पुल से उलट गई। भारी संख्या में लोग मारे गये। लाशों के ढेर के बीच एक लड़का अपनी माँ का दूध पीते पाया गया। लडके के हाथ में एक पर्स था जिसमें सत्तरह सौ बावन रुपये अठारह पैसे थे। लड़के के पिता का पता नहीं चल सका। उसकी मृत माँ का भी सिर्फ नाम मालूम हो सका है, अता-पता नहीं। जिस मृत औरत का बालक दूध पी रहा था उस औरत के हाथ पर गुदा हुआ नाम था---मीना।

12

अन्तरात्मा की आवाज

ओम अरोड़ा

* * *

एक उपमन्त्री था। उसके पास सरकार की दी हुई कार, कोठी, प्रतिष्ठा सभी कुछ था; लेकिन भगवान ने उसे कोई सन्तान नहीं दी थी। सन्तान के अभाव में वह दुःखी था। एक दिन किसी ने उसे बताया कि शहर में एक महात्मा ठहरे हुए हैं, उनकी अन्तरात्मा जो कह देती है, सच हो जाता है। उपमन्त्री तुरन्त महात्मा के पास पहुँचा और उसे अपना दुखड़ा कह सुनाया।

महात्मा बोला, "बेटा तुम्हें संतान-प्राप्ति हो सकती है लेकिन इसके लिये बहुत बड़ा त्याग करना होगा।" उपमन्त्री के लिये त्याग शब्द नया नहीं था। उसका सारा जीवन त्यागमय था। उसने कहा, "महाराज आप आज्ञा दीजिये। मैं सन्तान प्राप्ति के लिये प्रत्येक त्याग करने के लिये तैयार हूँ। आप कहें तो उपमन्त्री का पद छोड़ दूँ?"

"नहीं—इतने त्याग से काम नहीं चलेगा। इससे भी बड़ा त्याग करना होगा। तुम्हें दल बदलना होगा। मेरी अन्तरात्मा की आवाज है कि इस दल के ग्रहों से तुम्हारे सन्तान-प्राप्ति के ग्रह मेल नहीं खाते।"

मन्त्री ने हँसकर कहा, "बस महाराज! इतनी सी बात थी। इसे आप त्याग कहते हैं? यह तो उल्टा लाभ का काम है। वर्तमान मुख्यमन्त्री की कुर्सी के नीचे एक टाँग मेरी लगाई हुई है। इस टाँग के बदले विरोधी दल वाले मुझे मन्त्री बनाने के लिये आसानी से तैयार हो जायेंगे। आज ही शासक दल से त्याग-पत्र देता हूँ।"

महात्मा ने, उसे आश्वासन दिया कि अगर वह ऐसा करेगा तो उसे अवश्य सन्तान प्राप्ति होगी। उपमन्त्री महात्मा से तीसरे दिन मिलने के लिये कहकर चला गया।

जब उपमन्त्री ने मुख्यमन्त्री को अपना दल बदलने का निश्चय बताया तो मुख्यमन्त्री ने समझा कि उपमन्त्री मन्त्री बनना चाहता है। उसने उपमन्त्री को शीघ्र ही मन्त्री बना देने का वचन दिया। उपमन्त्री ने झुँझलाकर कहा, "मुझे मन्त्री पद का कोई लोभ नहीं है। मैं केवल दल बदलना चाहता हूँ। यह लीजिए मेरा त्यागपत्र।" यह कहकर वह चला गया।

मुख्यमन्त्री हैरान रह गया। उसकी समझ में नहीं आया कि विरोधियों ने उसे क्या कहकर बहकाया है?

आखिर उसने राज्य के गुप्तचर विभाग को यह आदेश दिया कि वे बाकी काम छोड़कर इस बात का पता लगायें कि फलां उपमन्त्री दल क्यों बदलना चाहता है? आदेश पाकर गुप्तचर विभाग उपमन्त्री के पीछे छाया की तरह लग गया और उसने तुरन्त वास्तविकता का पता लगा लिया। गुप्तचर विभाग ने यह सन्देह भी प्रकट किया कि महात्मा विरोधियों से मिला हुआ है।

उसी रात मुख्यमन्त्री ने महात्मा से भेंट की।

अगले दिन उपमन्त्री ने आकर महात्मा को सूचना दी कि उसने शासक दल से त्यागपत्र दे दिया है और विरोधी दलों के साथ मामला तय कर लिया है।

महात्मा यह सुनकर कुछ देर समाधिस्थ बैठा रहा और फिर उसने धीरे से कहा, "उपमन्त्री! अपना त्यागपत्र वापिस ले लो। अब तुम्हें दल

बदलने की आवश्यकता नहीं है। मेरी अन्तरात्मा कहती है, तुम्हें शीघ्र ही इस दल में रहते हुए ही सन्तान-प्राप्ति होगी। दल बदलकर तुम निस्सन्तान रहोगे।"

"लेकिन महाराज! परसों ही तो आपने मुझे सन्तान-प्राप्ति के लिए दल बदलने की सलाह दी थी।" उपमन्त्री ने चकित होकर पूछा।

"यह मेरी अन्तरात्मा की आवाज है।"

महात्मा ने गम्भीर होकर कहा।

"मगर महाराज आपकी अन्तरात्मा की आवाज में यह आकस्मिक परिवर्तन क्यों?"

"मेरी अन्तरात्मा ने दल बदल लिया है।" महात्मा ने उसी गम्भीरता से कहा।

13

दुख में अकेले

दिनेश विजयवर्गीय

* * *

उन्हें निमटते-निमटते भी नौ बज गये। वे झल्लाये—"अरे ओ प्रेमू की माँ क्या अभी तक खाना नहीं बना? आखिर तुम लोगों ने····।" वे आगे कुछ कहते हुए से ठहर गये। सामने प्रेमेन्द्र—उनका बड़ा लड़का खड़ा था।

"क्या बात है पिताजी?" वह उनसे पूछ रहा है। पर वे अब आग बबूला होकर बोल नहीं पा रहे हैं। जानते हैं यदि कुछ और बोला तो बस अभी चढ़ बैठेगा। इसलिये दबी ज़ुबान से बोल रहे हैं—"भई वो, कोटा जाने वाली बस निकल जाएगी न! साढ़े नौ पर रवाना हो जाएगी। और अभी तक भी खाना नहीं आया।"

प्रेमेन्द्र रसोई में जाकर खुद ही खाना परोसने की व्यवस्था में लग गया। दो रोटी ही ले पाये थे कि बस का टाइम निकट आ गया।

मुन्शी जी इस जेठ की चढ़ती सुबह में हाथ में बैग लटकाए, धूप से बचते हुए पेड़ों की छाओं में आगे बढ़ते जा रहे हैं। पर वह पहले की तरह भाग से नहीं रहे हैं। रईसी चाल से चल रहे हैं। पर दूसरे ही क्षण वे सोचते हैं—रईसी चाल हो कैसे सकती है। अब काहे के रईस हैं? रईसी तो पहले भी कब थी, पर फिर भी आज की स्थिति से ठीक थे।

इन छः महीनों में वह गभरा कितने गए हैं। नौकरी से पेन्शन क्या हुई जीते जी बरबादी हो गई। पहले ६००–७०० कुल पड़ जाते थे पर अब तो २०० भी मुश्किल से समझो। लेकिन इसका मतलब क्या हुआ? उनकी घर में इज्जत न रहे! प्रेमेन्द्र आएगा और बिना कोई आदर का सलूक किये बोलने लगेगा। और उपमा सबका अच्छा-खासा सिर दर्द है। जवान हो गई पर अभी तक शादी नहीं हो पाई। हर माह लड़का तलाश करने में आज यहाँ कल वहाँ के चक्कर लग रहे हैं। बस वह प्रेमेन्द्र की शादी कर पाए हैं। शादी को दो साल भी नहीं हुए कि दूसरा बच्चा होने वाला है। नौकरी भी तो तीन साल से करने लगा है—स्कूल की मास्टरी। लेकिन अब बोलेगा तो ऐसे जैसे कहीं का नवाब बोल रहा हो। पहले वहीं उन्हें मोटर तक छोड़ने के लिये साईकिल पर बिठलाकर लाता था। लेकिन आज पूछा तक नहीं। उसकी माँ भी कौनसी ध्यान देने लगी है। पहले वह सोचा करते थे—घर पर दिन भर मस्त रहेंगे। जी चाहेगा जिधर घूमेंगे। लेकिन वह ऐसा कर नहीं पा रहे हैं।

वह बस में बैठ गए। बस उनके बैठते ही रवाना हो गई। लगा जैसे उनकी प्रतीक्षा में हो। पर उन्हें जल्दी न पहुँच पाने से खिड़की के पास की सीट नहीं मिल पाई। वहाँ एक गाँव वाली महिला, बच्चे को लिये हुए बैठी थी। पर वह यह सोचकर कि अभी कहीं भी रास्ते में उतर जाएगी बैठ गए। वह फिर कुछ सोचने लग गए।

कितना अच्छा होता वह लेखक होते। यदि लेखक होते तो अब वह लेख कई ताजा घटनाओं पर लिख सकते थे। पुरानी व नई-पीढ़ी के संघर्ष पर अपने विचारों को किसी भी पेपर में प्रकाशित करवा देते। और इतने समय तक तो उनकी स्थिति लोकप्रिय लेखक जैसी होती। सम्पादक नाम देखता और सधन्यवाद स्वीकृत कर लेता। इस तरह आज वो जहाँ इस धंधे को तेजी से अपनाकर अपने समय का सदुपयोग करते वहाँ जेब खर्चे के पैसे से खुले हाथ रहते। और कुछ साग-सब्जी के पैसे भी निकलते।

कण्डक्टर —"कहाँ जाना है आपको ?" कहने पर वह एकाएक सिटपिटा गए। पर अपने आप को व्यस्त भाव से प्रस्तुत करते हुए लहजे में बोले "कोटा"।

"निकालिये दो रुपये"। कण्डक्टर ने टिकिट उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा।

उन्होंने टिकिट लेकर दो रुपये तो दे दिये पर उनको इन दो रुपयों पर दुःख हुआ। पहले जब वह प्रायः जाया करते थे तो एक रुपया पैंतीस पैसे लगते थे; फिर, एक सत्तर और अब पूरे दो रुपये।

कुछ ही दूर बाद वह गाँव वाली उतर गई। तो खिड़की के पास उनको बैठने को मिल गया। अब उन्हें ठण्डी हवा से राहत मिलने लगी थी।

इज़ी होकर वह अपने विचारों को बुनने लगे। बस उतरते ही वह किससे मिलना चाहेंगे।—ई. सी. बाबू से। हाँ इनसे ही मिलना ठीक रहेगा। और यदि गोल कमरे में गए तो एकाउन्ट्स वाले विनोद बाबू से मिलेंगे। लेकिन वहाँ जाने पर वह केवल इन दो व्यक्तियों से ही तो मिलकर नहीं रह जाएंगे! आखिर वह कई वर्षों तक इस ऑफिस में ओ. एस. रहे हैं। सारा स्टाफ उनके इशारे पर काम करता था। उन्होंने अपने समय पर कई 'फोर्थ क्लास' सर्वेन्ट्स की पदोन्नति बाबू बनवाकर की है। कई को गाँव की दूरियों से घसीटते हुए वह अपने कार्यालय में लेकर आए थे। उन्हें एकदम सभी अपने से लगने लगे और लगा, कि उनका काम जाते ही हो जाएगा—सिर्फ दो घण्टे में।

बस, स्टैण्ड पर आकर ठहर गई।

"रिक्शे से चलेंगे बाबूजी ?" रिक्शे वाला पूछ रहा है। पर वह सिर्फ 'नहीं' कहकर आगे बढ़ जाते हैं। पैदल ही चलना ठीक रहेगा। वह जानते हैं कि रिक्शे वाला कम से कम एक रुपया लेगा ही सही। पर अब तो वह एक रुपया भी नहीं दे पायेंगे। एक रुपया बचेगा तो घर पर एक टाइम की सब्ज़ी निकलेगी। और वह रुपये की इतनी अच्छी उपयोगिता खोज निकालने से प्रसन्न हुए।

धूप की तेज़ी बढ़ती हुए देख, वह पेड़ों के नीचे से रास्ता में निकलते हुए जा रहे हैं। कई बार वह इन रास्तों से गुज़रे हैं—तेज़-तेज़ कदमों से।

पर अब वह स्वतन्त्र हैं। धीरे-धीरे चल रहे हैं। और इस दार्शनिक चाल से चलकर वह कुछ अपने में ही घुलने का प्रयास कर रहे हैं।

जैसे ही घर पहुँच कर बताऊँगा कि पेन्शन का सारा काम एक ही दिन में पूरा हो गया है और अगले माह से ही उन्हें दो सौ रुपये मिलने वाले हैं तो सबको बेहद खुशी होगी। और बीमे की मिलने वाली रकम भी एक दो माह में ही मिल जावेगी। इस बीमे की रकम को पाकर सबसे अधिक खुशी प्रेमू की माँ को होगी। क्योंकि अब वह उनकी लाडली बेटी की शादी ठीकठाक कर देंगे। इस तरह जहाँ इन उपलब्धियों से उन्हें खुशी होगी वहाँ उन्हें घर पर यह बताने का अवसर भी मिल जावेगा कि कितना रेस्पेक्ट है अभी उनका ऑफिस में। रोब जो था पहले। देख लियाना प्रेमू की माँ एक ही दिन में हुआ है सारा काम। इसे वह घर पर मूछों पर हाथ फिराते हुए कहेंगे।

उनकी निगाह अपनी भावी कल्पनाओं से हट कर सामने ऑफिस के गेट पर चली गई। लगा जैसे कोई सपना बीच में ही टूट गया हो। वही का वही सब कुछ। बदला कुछ नहीं है। बाहरी गेट पर, नीम के पेड़ की छाया में खड़ा हुआ जग्गू भाई का चाय-पान का ठेला। अन्दर बाहर-दीवारी से लगा केन्टीन। केन्टीन से आने वाली चाय प्यालों की खनखनाहट उन्होंने सुनी तो उन्हें अपने लंच के दिन याद आने लगे।

उनका ऑफिस में रोब-दोब अच्छा था। कोई भी बाबू लंच टाइम से पहले लंच के लिये नहीं खिसक जाया करता था। और नहीं आधे घंटे की जगह एक दो घंटे लगाकर आने का आदि था। अब पता नहीं कैसे कुछ होगा।

जग्गू ने उन्हें देख लिया तो सलाम किया। और मुस्कराता हुआ कहने लगा—"बाबू जी आओ! एक प्याला चाय पीकर जाओ।" वह जग्गू से मना कर रहे हैं—"नहीं भाई, बहुत पी पहले ही। अब क्या····।" उन्हें मना करते समय अपनी जेब में पड़े रुपयों का ध्यान हो गया। और वह आगे बढ़ गए।

ऑफिस के बडे गोल कमरे के गेट पर पहुँचे तो साढ़े ग्यारह हो रहे थे। भीतर की सब ट्यूब लाईटें जली हुई थीं। वह बेहद प्रसन्न हुए—कि सब बाबू लोग आए हुए हैं।

एक दो मिनट उन्होंने गेट से ही सबका जायजा लिया। जैसे अब भी वह अपना समय ही समझ, कुछ कहेंगे।

कांती बाबू टाइप कर रहे हैं। गुलजार बाबू गरदन झुकाए कागजों और फाइलों के ढेर में फंसे हुए हैं। डी. सी. बाबू शायद कहीं गए हुए हैं। उनकी अलमारी खुली पड़ी है। दूसरी ओर देखा एकाउन्ट्स बाबू विनोद खड़ा इजी होकर सिगरेट पी रहे हैं। जब वह थे किसी बाबू की हिम्मत नहीं होती थी कि ऑफिस में बीड़ी-सिगरेट पीलें।

इन सबके बाद उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि ओ. एस. की सीट जहाँ से वह सब बाबुओं पर प्रशासकीय दृष्टि रखते थे, अब वहाँ नहीं रही है। शायद दूसरे कमरे में शिफ्ट कर दी गई है।

उन्होंने अन्दर कदम रखने से पहले सोचा कि वह विनोद बाबू से ही पहले मिलेंगे। वह ही उनका काम पूरा कर पावेंगे। सबसे पहले वह विनोद बाबू का ध्यान खेंचने के लिये उनसे नमस्ते जैसा कुछ कहेंगे। विनोद बाबू जैसे ही उन्हें अपने पास देखेंगे तो हड़बड़ाते हुए उठ खड़े होंगे। और नीचा सिर किये सिगरेट बुझाने के बाद में अपनी सिगरेट पीने की झेंप मिटाएंगे। वहीं पर जैसे ही सब बाबू उन्हें देखेंगे तो उन्हें आ घेरेंगे। सब हँसते खिलखिलाते उनकी कुशल क्षेम पूछेंगे।

—"कहिये क्या हाल है ?" कहते हुए वह सीधे विनोद बाबू की सीट पर पहुँच गए। वह अभी सिगरेट का पूरा कश भी नहीं खींच पाए कि कोई अपने पास नन्ही आई पूर्व परिचित आवाज से वह चौंक गए। विनोद बाबू ने उन्हें देख नमस्ते की। पर जैसे ही उन्हें आशा थी कि उन्हें देखते ही विनोद बाबू सिगरेट बुझा देंगे या उनके रेस्पेक्ट में खड़े हो जाएंगे, ऐसा कुछ नहीं हुआ।

वे अकेले रह गए। इस बड़े कमरे में उन्हें लगा कि सबने उन्हें 'नो लिफ्ट' देकर दूर काटकर रख दिया है। वे थे तब उनका कैसा रेसपेक्ट था यहाँ! और आज नौकरी से निवृत्त होने के बाद पहली बार आने पर भी कोई लगाव नहीं है। क्या वे इस तरह इन लोगों के अलगाव से अपना कार्य पूरा कर लेंगे? और यदि आज वे अपना कार्य पूरा नहीं करा पाए तो उन्हें घर पर भी कितना सुनना पड़ेगा। प्रेमू की माँ से—'लो साहब, खाली हाथ लौट आए। नहीं हुआ ना काम। कहती थी न सीट पर बने हो तब तक करवालो काम। तब बात और रहती है, और अब कौन किसे पूछता है।'

तभी एक कप चाय लिये ऑफिस का चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी—तुलसी राम आया। तुलसी राम ने उन्हें देख, दूर से ही नमस्ते की। और उनसे —"अच्छा तो हो बाबूजी?" कहकर लौटने लगा, तो उन्होंने ही पूछा— "क्यों भाई, आज क्या कोई विशेष बात है क्या?" वे चाय पार्टी के लिये पूछ रहे थे।

वह मुस्कुराया। फिर अपने को व्यस्त बनाते हुए बोला—"वो नई मिस सिन्हा है न, उनकी सगाई हुई है।" उसका संक्षिप्त उत्तर था।

"उन्होंने चाय सिप करते हुए सोचा—" क्या यही समय रह गया है चाय पार्टी के लिये। अभी तो ऑफिस शुरु ही हुआ है। लंच के समय भी तो किया जा सकता था यह सब। वे थे जब ऐसा नहीं हुआ करता था। बाबू को अपनी सीट पर ऑफिस समय तक रहना ही होता था। लंच टाइम ही वह इजी हो सकता था। उस समय किसी की यह शिकायत नहीं थी कि उनके ऑफिस में फलाँ टाइम से कोई कागज दबा हुआ है। उन्हें ध्यान आया, पिछले दिनों उन्होंने किसी अखबार में कहीं पड़ा था कि एक कर्मचारी को रिटायर्ड हुए एक वर्ष हो गया, और अब तक एक सौ शिकायती पत्र भी दे चुका है पर अभी तक पेन्शन केस बना नहीं है।

वे सब लोग आ गए। विनोद बाबू ने आकर उन्हें बताया कि उनका पेन्शन केस अभी पूरा नहीं बन पाया है। पुराना रेकार्ड ठीक से देखकर बना पायेंगे। करीब एक महीना और लगेगा।

"एक महीना.......।" वे चौंके।

उनकी इच्छा हुई कि वे पूछें—क्यों नहीं छः महीनों तक यह सब कुछ किया जो अब काम करना चाह रहे हो। क्या मुझे पैसों की आवश्यकता नहीं होगी? या उधारी पर ही पेट भर लूँगा।

14

सुहागरात

रघुनाथसिंह शेखावत

* * *

शहनाई बज रही थी, घोड़ों और हथियारों के झुण्ड साज सज्जा के साथ चले आ रहे थे, घुड़सवार ज्योंही लगाम को खींचते त्योंही घोड़े एक साथ हिनहिना उठते थे। महावत के अकुश से हाथी चिघाड़ मारते थे, बन्दूकें हवाई फायर कर रही थीं। चुस्त पायजामा, अचकन, केसरिया साफा आदि वस्त्र पहने सभी सरदार सजे हुए थे। उन सबके बीच भैरूसिंह हाथी के हौदे पर शोभायमान था। जरी का चमकता हुआ साफा सूर्य की किरणों को प्रतिबिम्बित कर रहा था, कमर में नागिन-सी तलवार लटक रही थी, पैरों में सोने का कड़ा और कंगण डोरा बंधा हुआ था और भैरूसिंह फूले नहीं समा रहा था। पीछे-पीछे सुन्दर सजा हुआ रथ आ रहा था जिसमे उसकी नवोढ़ा पत्नी सपने संजोये बैठी थी और रथ के झीने पर्दे से हाथी पर चढ़े हुए अपने कन्त को निहार रही [illegible] सोच रही थी कि [illegible] ना सुन्दर है, [illegible] मनमोहर

उसका कन्त ? गठा हुआ शरीर, गोरा चेहरा, मोटी आँखें, कितना खूबसूरत, कितना स्वस्थ ? मेरा भाग धन्य है कि मुझे ऐसा कंत मिला। उधर हाथी पर सवार भैरूंसिंह के मन में विचारों के तांते बंध रहे थे। आज का सूर्य बड़ा सुहावना है, सुना है कि वह रूपवती है, सुन्दर है और गुणों की खान है। जब मैं प्रेमपाश में बंधूंगा तो मुझे कितना आनन्द आयेगा, वे सुनहली घड़ियाँ मेरे लिए स्वर्ग से भी बढ़कर होंगी। सोचते-सोचते भैरूंसिंह का गाँव बजावा आगया। महलों, अटारियों और हवेलियों की छतों पर स्त्रियों ने मधुर गान शुरू कर दिये।

बन्दूकें फिर दनदना उठीं, हवाई फायर कर-कर वे जता देना चाहती थीं कि भैरूंसिंह शादी कर वापिस पहुँच गए हैं। आँगन के प्रथम द्वार पर पुरोहित मंत्रोच्चारण कर रहा था, गठजोड़े के साथ तिलक का शुभ शकुन कर भैरूंसिंह रावले (अन्तःपुर) पधार गये और द्वार पर बारहठ बिरदावली गा रहा था।

× × × ×

"महाराज की जय हो ! शेखावत संघ का एक दूत आया है और वह आपसे मिलना चाहता है" अन्तःपुर की सेविका ने आकर अर्ज की। "उसे सम्मान सहित बैठाओ, मैं अभी आता हूँ" "हुकम साहब" कहती हुई सेविका अन्तःपुर से बाहर हो गई और सेवक को खबर दी। सेवक ने दूत को सम्मानसहित दीवानखाने में बैठाया। थोड़ी देर बाद भैरूंसिंह दीवानखाना में आ गये। दूत खड़ा हुआ, अभिवादन किया और पत्र भैरूंसिंह के हाथों में थमा दिया। भैरूंसिंह ने पत्र खोला और पढ़ने लगा—

"विधर्मी बादशाह शाहआलम की फौज हमारे आदर्श, हमारे खानदान और हमारे राज्य को कुचलने के लिए विद्रोही मिश्रसेन अहीर, पीरखाँ और कायमखानियों से मिलकर हमारी मातृभूमि पर चढ़ आई है। वह हमारे धर्म और आदर्शों को मटियामेट कर इस्लाम का झण्डा फहराना चाहती है। मातृभूमि के सभी सपूत आज आन और बान पर मर मिटने के लिए तैयार खड़े हैं, सबकी भुजाएँ अरियों को सजा चखाने फड़क उठी हैं, सबका रक्त उबल रहा है और सबकी तलवारें अरियों के खून से प्यास मिटाने के लिए उतावली हो रही हैं और सभी बहादुर बादशाही फौज का मार्ग अवरुद्ध करने के लिए मांडण की ओर बढ़ चले हैं। हम उन आततायी को मानमर्दन का

मजा चखाना चाहते हैं। अगर आप इस पुण्य कार्य में हाथ बँटाना चाहते हैं तो तुरन्त रण-भूमि की ओर पधारिये और अगर शेखावत कुल पर बट्टा लगाना चाहते है तो आपकी मर्जी। हम तो अपनी आन पर मर मिटने के के लिए प्रयाण कर चुके हैं।"

पत्र पढ़ते ही इस बीर का रक्त उबल उठा, पुरखों द्वारा कही हुई बहादुरों की कहानियाँ कुछ ही क्षणों में सिनेमा के चित्रों की भाँति निकल गई। ममता और कर्त्तव्य दोनों सामने खडे दिखाई दिये। ममता ने कहा "मेरे रंगीले सरदार! युद्धों में जो मरता है वह मूर्ख होता है। देखते नहीं चन्द्रमा-सी मुख वाली, मृगनयनी, तुम्हारी नवोढ़ा पत्नी रँगीले महलों में तुम्हारा इन्तजार कर रही है, जानते नहीं, आज तुम्हारी सुहागरात है, अभी तो तुमने पहली बार भी उसका मुख नहीं देखा है। अभी तो तुम्हारे कंगण-डोरे भी नहीं खुले है, प्रथम मिलन की प्रथम रात्रि तुम्हारा इन्तजार कर रही है। ऐसी रँगीली घड़ियों को छोड़कर युद्ध में मरना कहाँ तक उचित है? चलो महलों की ओर···।"

कर्त्तव्य बोल उठा—"वीर! तुम सोच क्या रहे हो? ममता तुम्हारी सबसे बड़ी दुश्मन है। इसको ठोकर मार कर कर्मपथ पर बढ़ना ही मनुष्य का धर्म है। क्या तुमने अपने पुरखों की बहादुरी की कहानियाँ नहीं सुनी हैं, क्या तुम्हारी नसों में उनका शुद्ध रक्त नहीं बह रहा है, क्या तुम नहीं जानते कि उन्होंने हँसते-हँसते मातृभूमि के लिए अपने प्राण निछावर कर दिए थे, क्या तुम्हें याद नहीं है कि सिर कटने पर भी उनके धड़ ने अरियों को गाजर-मूली की तरह काट गिराया था, क्या तुम उनकी सन्तान नहीं हो? ममता को ठुकराओ, रण-भूमि की ओर बढ़ो और दुश्मन को नाकों चने चबाओ।"

कर्त्तव्य की पुकार सुनते ही भैरूँसिंह ने झट पत्र का उत्तर लिख डाला—"आपने सही समय पर मुझे याद किया है, मेरा मार्ग बताया है। मेरे सभी भाइयो! मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं मांडण के रणक्षेत्र में आपको तैयार मिलूँगा। मातृभूमि की रक्षा खातर उसके मान पर मैं मिटूँगा, पर हटूँगा नहीं, आप निश्चिन्त रहिए।" पत्र बंद किया और दूत के हाथों में दे दिया। दूत झट घोड़े पर चढ़ा और मांडण की ओर चल पड़ा।

भैरूँसिंह ने अपनी सेना को तैयार होने का आदेश दे दिया और स्वयं शस्त्रालय की ओर बढ़ा, कवच पहने, कमर में तलवारें बाँधीं और रणभेष में

सज गया। इसी बीच मैंहसिंह को ममता ने थोड़ा झकझोरा, वीरोचित चेहरा कुछ उदास हुआ। मन ही मन सोचने लगा—तुम्हारी शादी अभी हुई है, पत्नी ने भी भर कर तुम्हें देखा भी नहीं और तुमने उसके दर्शन तक नहीं किए। आने वाली रात्रि में मेरा प्रथम मिलन होता; कितने सपने संजोये थे मैंने। क्या वे सब व्यर्थ जायेंगे? युद्ध से सुरक्षित लौटना सम्भव नहीं दिखता, पत्नी पर क्या बीतेगी? विचारों का तांता टूटा! हैं! मेरे में यह कायरता कहाँ से आ गई? नहीं ममता तू मेरे कर्त्तव्य को विचलित नहीं कर सकती। रण में जाते समय पत्नी के दर्शन तो करलूँ, वह मुझे रोकेगी तो नहीं? नहीं, वह रोकेगी नहीं। वह रूपवती ही नहीं वीरांगना भी है। ऐसा सोचता-सोचता मैंहसिंह महलों की ओर बढ़ गया।

महलों में पैर पड़ते ही रानी झट पलंग से खड़ी हो गई और पति के चरण चूमे तथा शरमाती-सी एक ओर खड़ी हो गई। मैंहसिंह ने कहा—"रानी! बादशाह शाहआलम की सेना हमारे आदर्श, हमारी धरा तथा हमारी आन को लूटने के लिए चढ़ आई है। यह खबर अभी शेखावत संघ का दूत लेकर आया है और साथ ही मुझे युद्ध का निमंत्रण दिया है, मुझे अभी रणभूमि की ओर बढ़ना है तथा रण में दुश्मन को मजा चखाना है। बोलो! तुम्हारी क्या आज्ञा है?"

यह सुनते ही रानी के हृदय में एक तरह की सनसनाहट पैदा हुई, उसकी शर्म मानों हवा हो गई। पति के चरणों में पड़ी और बोली—"प्राणनाथ! मुझे इस समय ममता और कर्त्तव्य दोनों झँकझोर रहे हैं परन्तु मेरी माता ने मुझे यह पाठ पढ़ाया है कि बेटी क्षात्र धर्म पर चलना तलवारों की धार पर चलना है। अपने कुल की मान मर्यादा की इज्जत हर कीमत पर रखना ममता और कर्त्तव्य के द्वन्द्व युद्ध में हमेशा कर्त्तव्य का आलिंगन करना। इसलिए मैं कर्त्तव्यच्युत नहीं होऊँगी, आपके मार्ग में बाधक नहीं बनूँगी। आप युद्ध-भूमि में जाइये और वैरी को ऐसा पाठ पढ़ाइये कि वह फिर कभी इस भूमि की ओर आँख भी न उठावे। मैं भगवान से विनय करूँगी कि आप दुश्मन पर विजय प्राप्त कर लौटें और उस समय आपका आलिंगन करूँगी।"

"पर युद्ध बड़ा भयंकर होगा लौटने की आशा व्यर्थ है।"

"तो चिन्ता की कोई बात नहीं है आप बहादुरी के साथ रण में

लड़िये। अगर आप लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए तो भी यह जीवन-संगिनी आपका साथ नहीं छोड़ेगी, स्वर्ग में अपना पुनर्मिलन होगा। आप युद्ध में जाओ और दुश्मन से लड़ो, इस दासी की ओर से किसी बात की चिन्ता मत करना।" रानी ने दृढ़ विश्वास के साथ कहा।

"तुम्हें धन्य है, सौ बार धन्य ! मुझे गर्व है कि पत्नी के रूप में मुझे एक वीरांगना मिली है। तुमने मुझमें दुगुना उत्साह भर दिया है। अब हजारों अरियों की तलवारें भी मेरा सिर नहीं काट सकती। बहादुर क्षत्राणी मुझे विदा दो।" कहते हुए भैंरूसिंह ने प्रिया का आलिंगन किया, प्यार के दो शब्द कहे और महलों से बाहर आ गया जहाँ रण के लिए सजी हुई सेना उसका इन्तजार कर रही थी।

सजे हुए घोड़े पर यह वीर सवार हुआ और अपनी सेना को सम्बोधित करते हुए बोला, "बहादुरो ! हमें अब शीघ्र ही मांडण के रण-क्षेत्र में पहुँचना है, जहाँ अपने अन्य बहादुर जवान मातृभूमि की रक्षा हेतु मर मिटने के लिए तैयार खड़े हैं। तुम्हें युद्ध में दिखा देना है कि प्रत्येक राजदूत अपनी आन व बान के लिए सिर कटा सकता है मगर झुका नहीं सकता। जिसको मातृभूमि से प्यार नहीं, जो युद्ध में मरने से डरता है और कायर की भाँति जीना पसन्द करता है और जो परतन्त्रता को ग्रहण कर महलों में सुख की नींद सोना चाहता है, वह अभी अपने घर को लौट सकता है।" सभी ओर से आवाज आई "मरेंगे पर हटेंगे नहीं।"

"तो आओ मेरे साथ आगे बढ़ो देर, करने का समय नहीं है।" 'हरहर महादेव' के शब्दोच्चारण के साथ ही भैंरूसिंह का घोड़ा मांडण की ओर बढ़ चला और पीछे समस्त सेना जय-जयकार करती हुई बढ़ चली।

मांडण की इस रण-भूमि में शेखावाटी के प्रत्येक भाग की सेना आकर दुश्मन से भिड़ गई थी। भैंरूसिंह अपनी सेना के साथ ठीक समय पर पहुँच गया। घमासान युद्ध शुरू हुआ, बहादुरों की तलवारें झनझना उठीं, बरछी भाले अरियों का रक्त चाटने नाच उठे। महादेव की जय के साथ ही भैंरूसिंह अपनी टुकड़ी सहित अरि दल पर टूट पड़ा। जिधर भी उसकी टुकड़ी की तलवारें चमक उठतीं, मैदान साफ नजर आता। भैंरूसिंह ने तो इस समय भैरू-सा रूप धारण कर लिया था। दुश्मनों को गाजर-मूली की तरह काटते हुए वह आगे बढ़ता ही गया। उसकी तलवार रण बिजली की तरह चमक रही थी।

आखिर में वह बहादुर अरियों के बड़े भारी झुण्ड में घिर गया और बहादुरी के साथ लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। यह वीर मातृभूमि के लिए कुरबान हो गया पर अन्तिम दम तक उसने दुश्मन को आगे बढ़ने नहीं दिया और युद्ध में शेखावतों की विजय में इस बहादुर का महान योग रहा।

पत्नी को जब अपने बहादुर पति के वीरगति होने का समाचार मिला तो उसके मुख से निकल पड़ा, "मेरे पति ने मेरे धर्म, मेरी भूमि और मेरे चूड़े की लाज रखली है।" वह तुरन्त युद्ध-भूमि में गई और पति के शव को लेकर धक्धक् करती हुई अग्नि में बैठ गई और सती हो गई। सती के चारों ओर खड़ी हुई अपार भीड़ से यही आवाज़ आ रही थी—'बहादुरों की सुहागरात रणभूमि में ही मनती है'।

15

सुनहरा-रूमाल

नाथूलाल चोरडिया

* * *

धरती के दीपक एवं नभ के तारों के मध्य आज होड़ लगी हुई है। तारों की टिमटिमाहट से गगन जगमगा रहा है तो दीप-पंक्तियों से पृथ्वी ज्योतिर्मय हो रही है। देश का हर घर, हर आंगन दीप-ज्योति से ज्योतित है। कृष्ण पक्ष भी आज शुक्ल-पक्ष-सा विदित हो रहा है। चहुँ ओर मानों ज्योत्सना छिटक रही हो। घर-घर में भाँति-भाँति से खुशियाँ एवं रंग-रेलियाँ मनाई जा रही हैं। आज दीपावली की छटा अत्यन्त ही अद्भुत दिखाई दे रही है। हर स्थान पर चहल-पहल छाई हुई है।

परन्तु दीपक के बैठक-कक्ष में आज धुँधला प्रकाश है। अपनी ठुड्डी को दाहिनी हथेली पर धरे दीपक अपने कक्ष में शान्त बैठा हुआ है। कक्ष का टिमटिमाता तेल-दीप दीपक के उदासीन चेहरे की कान्ति को और अधिक क्षीण बना रहा है। दीपक के मन में भाँति-भाँति के विचार उठ रहे हैं। एक क्षण आत्म हत्या करने की सोचता है तो दूसरे क्षण घर छोड़ने की। कभी

कहीं अन्यत्र कूच कर जाने की तो कभी सन्ध्या को सदा सर्वदा के लिये त्याग देने की।

दीपक की देह पल-पल पर तप्त तवे की भाँति अधिकाधिक उष्ण होती जा रही है। सोचते-सोचते दीपक ने विचार किया—'सन्ध्या घर में नहीं है। क्यों नहीं, मेरे अनिष्ट एवं अभाग्य की निशानी उस रूमाल को मैं अपने अधिकार में लेलूँ!' वह उठा, सन्ध्या के कक्ष में जाकर उसके सन्दूक से वह सुनहरा रूमाल लेकर अपने कोट की जेब में रख लिया और अपने कक्ष में लौट आया। सोचने लगा—'प्रभो! मेरे दुर्भाग्य का दृश्य दिखाने का दिन भी तूने आज का ही चुनकर नियत कर रखा था।'

सन्ध्या घर में लौट आई। सायंकालीन भोजन पर दीपक को बुलाने उसके कक्ष में प्रवेश किया। सन्ध्या को देखते ही दीपक की त्यौरियाँ चढ़ गईं। ज्योंही सन्ध्या ने दीपक को कुछ कहना चाहा कि दीपक के चेहरे के उतार-चढ़ाव को देख कुछ सहम गई एवं सोचने लगी—'आज सायंकाल से ही इन्हें क्या हो गया है? कुछ समझ में नहीं आ रहा है। पर सन्ध्या का साहस नहीं हुआ कि दीपक से खुल कर बात करे। वह उसके स्वभाव को गत ५ वर्षों से जानती थी। दीपक के रुख के अनुकूल ही बातचीत किया करती थी। पर आज दीपावली के शुभ पर्व पर अपने प्रियतम का यों अनमना रहना सन्ध्या कैसे सहन कर सकती थी। साहस कर दीपक से पूछ ही लिया—

'आपके कक्ष में तो मैंने बड़ा दीपक रखा था। यह धुँधला दीपक क्यों जलाया।'

दीपक तो अपने मन का भाव सन्ध्या पर किसी न किसी भाँति प्रकट करना ही चाहता था। चिढ़कर बोला—

'इस प्रश्न का उत्तर वह देगा जो तुम्हारा अपना है।'

'आपका मतलब!'

'मतलब वही जो तुम समझ रही हो।'

'मैं कुछ भी तो नहीं समझी।'

'समझते हुए भी न समझने का नाटक करना ही तो स्त्री-जाति की मुख्य कला है।'

'आप कहना क्या चाहते हैं?'

'चाहते हुए भी कुछ नहीं कहना चाहता। तुम्हारे लिए समझ
ही पर्याप्त है।'

'मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है।'

'वाह! तुम्हें क्यों समझ में आएगा।'

दीपक को अब अधिक क्रोध छा गया। क्रोधातुर होकर कहने ल
'इतनी नादान न बनो, सन्ध्या! वह समय दूर नहीं जब तुम्हें कुछ भी
झने की जरूरत नहीं होगी।' सन्ध्या कहने लगी—'यह आपकी पहेलि
भाषा कुछ भी समझ में नहीं आ रही है। आप साफ-साफ क्यों नहीं क
आज आपको क्या हो गया है?'

'मुझे जो कुछ हो गया है उसे नहीं जानने में ही तुम्हारा हित है।

'तो क्या मुझसे कोई अपराध हो गया है?'

'अपराध! तुम उसे अपराध कहती हो! विश्वासघात का दू
नाम अपराध नहीं होता, सन्ध्या!'

'विश्वासघात, और मुझसे? कैसा विश्वासघात? और कि
प्रति?

'उस मृत्यु सम वज्र घात को जिह्वा पर लाने के लिए मुझे विवश
करो, सन्ध्या! अभी तुम जाओ यहाँ से। मेरा दम घुट रहा है। तुम ह
जाओ यहाँ से।'

'हे प्रभो! इन्हें क्या हो गया? इन्होंने कोई नशा तो नहीं किया?'
सन्ध्या ने दुःखी होकर कहा।

'नशा और मैंने? मैंने तो नहीं, परन्तु तुम्हें अवश्य नशा चढ़ा हुआ
है।'

'यह क्या कह रहे है, आप? भगवान् की कृपा से अब इस शुभ पर्व
की पावन रात्रि को तो अमङ्गल मत बनाइये।'

'मंगल, अमङ्गल कुछ नहीं। मेरी अन्तिम बात सुन लो। जितनी देर
तुम यहाँ खड़ी रहोगी मेरा दम उतना ही अधिक घुटता जाएगा। अब तुम
यहाँ से चली जाओ। कल प्रातः की प्रथम किरण के साथ ही मैं अपने जीवन
में असामयिक सांझ लाने वाले इस संहारक रहस्य का उद्घाटन कर दूँगा।'

अपना मुँह आंचल में छिपाये सन्ध्या अश्रुधारा बहाती हुई दीपक के कक्ष
से बाहर चली आई। सीधी अपने शयन-कक्ष में गई। शान्त हो बिना कुछ

वह अधीर हो उठा। इस जग के झूठे नातों से उसने सम्बन्ध तोड़ देने चाहे। उसने निश्चय किया—'आज अब सन्ध्या को सब कुछ बता दूँगा।

सन्ध्या को भी कहाँ शान्ति थी। आँगन में धूप छिटकते ही शान्त, उद्विग्न मन से दीपक के कक्ष में प्रवेश किया। देखते ही दीपक ने कहा—'तुम आगई ? बहुत शीघ्रता की। शायद राज पर पर्दा डालने!'

'राज हो या पर्दा ! मैं कुछ नहीं जानती। मैं अब स्पष्टतः वह सुनना चाहती हूँ जिसने मेरी हरी-भरी जीवन-बगिया को झुलसा दिया।' सन्ध्या ने आवेश पूर्वक कहा।

'तो सुनलो और लो ! देख भी लो अपने प्रेमी की निशानी का वह 'सुनहरा रूमाल !'·यह कहते हुए दीपक ने अपने कोट की जेब से वह रूमाल निकाल कर सन्ध्या की ओर फेंक दिया।

'यह क्या ? यह आप कहाँ से लाये ? यह तो मेरे सन्दूक में था।' सन्ध्या ने रूमाल उठाते हुए कहा।

हाँ, यह तुम्हारे प्रेमी की निशानी तुम्हारे सन्दूक से मैंने चुराली। माफ करना, सन्ध्या ! दीपक ने गहरा सांस खींचते हुए कहा।

कौन प्रेमी ? कैसी निशानी ? यह आप किसकी बात कर रहे हैं ?

'मैं तुम्हारे उसी प्रेमी दिनेश की बात कर रहा हूँ जिसने सप्रेम कल तुम्हें यह रूमाल भेंट किया।'

'कौन दिनेश ? कैसी भेंट ? यह रूमाल तो मेरे सञ्जीव भैय्या की भेंट है।'

'सन्ध्या !…………पागल बनाने का प्रयत्न मत करो, सन्ध्या ! मैंने उसे उसकी प्रेमिका इस सन्ध्या को हाथों-हाथ यह भेंट का रूमाल देते हुए अपनी आंखों से देखा है। पर्दा डालने का असफल प्रयास मत करो। मुझे सब मालूम है।'

सुनते ही सन्ध्या के तन-वदन में मानों आग लग गई हो। उसकी सम्पूर्ण देह गरम हो गई।। खड़ा रहना असम्भव हो गया। आँखों के सामने अन्धेरा छा गया। मूर्च्छा आने जैसी स्थिति हुई। देह सँभाले नहीं सँभल रही थी। अन्त में अपनी आँखों को अपने हाथों से ढक कर जमीन पर बैठ गई। दीपक बराबर देखता रहा। कुछ समय पश्चात् सन्ध्या ने अपना सिर उठाया और डबडबाई सी आंखों से दीपक की ओर देखती हुई कहने लगी—

'स्वामी ! मुझ अभागिन पर इतना जुल्म मत ढाओ। सच कहती हूँ मैं किसी दिनेश को नहीं जानती।'

दीपक को अपनी आँखों देखी पर पूर्ण विश्वास था। कहने लगा—'तुम नहीं जानती, पर मैं जानता हूँ और पहचान भी गया हूँ जबकि कल सायंकाल से पूर्व तुम्हारे दीप-थाल लेजाते समय गांधी गली के मोड़ पर उसने यह रूमाल तुम्हें भेंट-स्वरूप दिया। मैं बाज़ार जाने हेतु उसी मार्ग पर तुम्हारे पीछे आ निकला। परन्तु उससे तुम्हें रूमाल लेते देख वहीं रुक गया। दिनेश फिर सामने की नेहरू-गली में तेजी से चला गया। बोलो, क्या सच नहीं है ? जवाब दो।'

सन्ध्या ने रूमाल उठाया। कुछ सोचने लगी। फिर कहने लगी—हाँ, याद आया पर यह बात असत्य है। यह सत्य है कि यह रूमाल उस समय गिर गया था। एक सज्जन ने मुझे पीछे से आकर अवश्य दिया। मैं नहीं जानती कि वे कौन थे एवं किधर गये।'

'सन्ध्या ! हर प्रेमी-प्रेमिका सच्चाई पर पर्दा डालने के लिए ऐसा ही कहते हैं।'

'ओ परमात्मा ! तू मुझे धरती से उठाले। अब नहीं सुना जाता।' सन्ध्या हाय विलाप करती हुई कहने लगी। परन्तु दीपक सन्ध्या से भी अधिक व्यथित था। सन्ध्या के हावभाव देखकर कहने लगा—

'यह नाटक दिखाने की जरूरत नहीं, सन्ध्या ! यह ढोंग तो अब दिनेश को दिखाना। वह आने ही वाला है। उसने दो दिन पूर्व से ही अभी के भोजन के लिये निमन्त्रण दिया है। शायद मैं न भी आ सकूं तो भी तुम्हें तो अवश्य जाना है। अन्यथा उसका दिल मारा जाएगा।'

'भगवान के लिये कुछ तो सोच कर कहिए।'

'क्यों ! कटु सत्य बुरा लगता है ?'

इसी समय बाहर के मुख्य द्वार पर दस्तक हुई। दीपक समझ गया कि दिनेश ही होगा। कहने लगा—'लो ! वह आगया, सुनहरे रूमाल का भेंट-कर्त्ता। जाओ, दरवाजा खोलो।'

सन्ध्या नहीं उठना चाहते हुए भी विवश होकर उठी। दरवाजा खोला। दिनेश ने अन्दर प्रवेश किया और सीधा दीपक की बैठक में चला गया। कक्ष में प्रवेश के साथ ही कहने लगा—'अरे भाई दीपक जी ! क्या कल अपने ही घर की दिवाली से जगमगाते रहे। बाहर की दिवाली की

भी तो आनन्दानुभूति करते। रात्रि को बाजार में देर तक तुम्हारी प्रतीक्षा करते रहे पर तुम्हारी झलक तक दृष्टि-गत नहीं हुई।'

दिनेश तो सामान्य स्तर पर मित्र-भाव से वार्ता कर रहा था, परन्तु आज दिनेश दीपक को एक काले नाग सदृश्य दिखाई दे रहा था। दीपक की उसके प्रति रह रह कर ग्लानि बढ़ रही थी। दिनेश से कोई वार्ता नहीं करना चाहता था। उसे इतना शान्त एवं खिन्न-सा देख दिनेश ने कहा—'क्या बात है ? यों शान्त कैसे हो ? उठो, शीघ्र भोजन हेतु चलने को तैयार हो जाओ।'

'मैं तो आज कुछ अस्वस्थ हूँ। तुम सन्ध्या को ले जाओ। ठीक रहैगा।' दीपक ने अनमनेपन से कहा।

'अस्वस्थ हों तुम्हारे दुश्मन ! मैं तुम्हें अभी ठीक किये देता हूँ।' यह कह दिनेश ने दीपक का हाथ पकड़ कर उठाना चाहा। सन्ध्या भी पुनः दरवाजा बन्द कर कक्ष में आ चुकी थी।

परन्तु दीपक ने झटक कर हाथ हटाते हुए कहा—'हट जाओ दिनेश खूब परखा, तुम्हारा स्नेह और मित्र-भाव ! और खूब देखी तुम्हारी रास-लीला।'

दिनेश वहीं का वहीं स्तब्ध रह गया। कुछ सोचते हुए कहा—'आपका क्या मतलब है ? मैं आपकी बात बिलकुल भी नहीं समझा।'

'नहीं समझे तो सब अपनी सच्चरित्र भाभी से सब कुछ समझलो।' दीपक ने तेज व्यंग्य में कहा।

सन्ध्या तो सब कुछ जानती थी। फिर इस व्यंग्य-बाण को कब सहन कर सकती थी। दिनेश से कहा—'सुनिये ! मैं समझाती हूँ। इन्होंने आपके एवं मेरे चरित्र पर लाञ्छन लगाया है। कहते हैं, कल गाँधी गली के मोड़ पर मुझे सायंकाल को आपने यह सुनहरा-रुमाल प्रेम की निशानी स्वरूप भेंट किया है।' इतना कह कर सन्ध्या ने वह रुमाल दिनेश के सामने रख दिया।

यह सुनते ही दिनेश सन्न रह गया। 'काटो तो खून नहीं' जैसी दशा हो गई। दीपक पर प्रहार करने का विचार आया, परन्तु एक क्षण के लिये कुछ सोच कर रुक गया। निकट में रखे रुमाल को उठाकर देखने लगा। देखकर कहने लगा—'यह रुमाल तो कल किसी औरत का उस गली में गिर गया था। मैंने उसे रोक कर अवश्य वापस दिया। मैं उसका चेहरा नहीं

पाया, मुझे नहीं मालूम कि वह औरत, ये भाभीजी थीं या अन्य कोई !'

'क्या कहना, आप दोनों ने मुझे पागल बनाने की कहानी भी गढ़ रखी है ! दिनेश ! मुझे इतना नादान मत समझो। तुमने जिस हांडी में खाया उसी में छेद किया है।' दीपक ने रोष भरी वाणी में कहा।

दिनेश यह सुनकर क्रोधातुर हो उठा और दीपक के समक्ष खड़ा हो ऊँची आवाज़ में कहने लगा—'दीपक ! अब एक शब्द भी और कुछ कहा तो तुम्हारी जिह्वा बाहर दिखाई देगी। मुझे नहीं विदित था कि तुम जैसे गम्भीर और ज्ञानवान् भी इतने निम्न स्तर की बात कर सकते हैं। तुम्हें अन्य पर क्या, अपने आप पर भी विश्वास नहीं, ऐसा मालूम होता है।'

पर अपनी आँखों देखी घटना के प्रति किस भाँति दीपक असत्य की कल्पना कर सकता है और वह भी इस आधुनिक युग में। नितान्त असम्भव ! उठकर दीपक कहने लगा—

'दिनेश तुम्हारी इन सब सफाइयों की कल्पना मैं बहुत पूर्व कर चुका हूँ। अब तो तुम अपनी खैरियत चाहते हो तो सीधे उल्टे पाँव यहाँ से बाहर निकल जाओ, वर्ना................'

इतना कह दीपक ने अपने कक्ष में मेज पर रखी राइफल पर हाथ रखा। दिनेश ने सोचा, सम्भव है कि दीपक भावावेश में कुछ अनहोनी कर बैठे। अतः उसने चले जाना ही उचित समझा। परन्तु उठते-उठते कहने लगा—

'दीपक ! मैं जाता हूँ। पर तुम इतना स्मरण रखना कि तुम्हें अपने भ्रमित मस्तिष्क के कारण इसका अनपेक्षित दुष्परिणाम भुगतान होगा।'

दिनेश के जाने की सुन सन्ध्या ने विचार किया—'मैं तो अभी भी अपने स्वामी के सम्मुख कलंकिनी हूँ। यह मुक्ति तो भैय्या के आने पर ही हो सकती है।' फिर विचार आया—आज भाई दूज भी तो है। भैय्या ने आज 11 बजे की गाड़ी से आने को लिखा है फिर कुछ समय क्यों न दिनेश जी को भी रोक लिया जाय, और दिनेश से कहा—'आप कुछ समय के लिये और रुक जाये। मेरे भैय्या भी भाई दूज के कारण आज आते ही वाले हैं वह सुनहरा रुमाल वह भी तो देख लें।'

पर दीपक तो अपने ही विचारों की ज्योति से दीपित था। सन्ध्या की बात के मध्य ही बोल उठा—

'हाँ, हाँ, अवश्य रुकिये जितनी अधिक देर आप विराजेंगे, उतने ही अच्छा रहा..............।'

आगे कहते-कहते बाहर मुख्य द्वार से आवाज़ आई—'सन्ध्या ! दरवाजा, खोलो, हम आ गये हैं।' सुनते ही सन्ध्या ने रूमाल उठाया और जाते हुए कहा—'लो ! मेरे सञ्जीव भैय्या आ गये हैं।' सन्ध्या ने दरवाजा खोला। सञ्जीव के अन्दर आते ही सन्ध्या ने चरण-स्पर्श किया। सञ्जीव अपना सामान सन्ध्या को सौंप दीपक के बैठक-कक्ष की ओर बढ़ा। प्रवेश होते ही देखता है कि दीपक जी के साथ एक सज्जन और बैठे हैं। परन्तु दोनों में कोई वार्ता नहीं हो रही है। दोनों ने उठकर सञ्जीव का स्वागत किया, फिर तीनों ही बैठ गये। सन्ध्या ने अपने सञ्जीव भैय्या को जल पिलाया और चाय बनाने चली गई। पर कक्ष में निर्विघ्न शान्ति देख सञ्जीव से नहीं रहा गया। कुछ कहना ही चाहा कि दिनेश ने जाने की सञ्जीव से स्वीकृति चाही। पर सञ्जीव ने उन्हें चाय पीने तक बैठने का आग्रह किया। इतने में सन्ध्या चाय ले आई। सञ्जीव ने दिनेश के जाने की शीघ्रता की बात कहते हुए सर्वप्रथम दिनेश को चाय देने को कहा। पर सन्ध्या को सङ्कोच करते देख सञ्जीव ने दिनेश की ओर चाय बढ़ाई। पर आज दिनेश का यहाँ चाय पीना विष-तुल्य हो रहा था। सञ्जीव द्वारा दिये जा रहे कप की ओर हाथ बढ़ा कर कहा—

'क्षमा करिये, मैं अभी चाय नहीं पीता हूँ।'

'क्यों ! आप चाय नहीं पीते !' सञ्जीव ने कहा।

'पीता तो हूँ, परन्तु अभी तमन्ना नहीं है।

'अजी, तमन्ना को रखिये एक ओर। लीजिये आपको पीनी ही होगी।' यह कहते हुए सञ्जीव ने चाय का कप पुनः दिनेश की ओर बढ़ाया। दिनेश ने हाथ बढ़ा कर पुनः रोक देना चाहा, परन्तु सञ्जीव ने आग्रहपूर्वक देना चाहा। इसी देने और मना करने के शिष्टाचार ही शिष्टाचार में चाय सञ्जीव के हाथ और कपड़ों पर गिर गई। कप को शीघ्र नीचे ट्रे में रख सञ्जीव ने धोने के लिये उठना चाहा, परन्तु सन्ध्या ने रोक कर कहा—'ठहरिये, पहले आप इस रूमाल से पोंछ लीजिये।' यह कहते हुए सन्ध्या ने अनायास ही वह रूमाल सञ्जीव को दे दिया। रूमाल हाथ में लेते ही सञ्जीव कहने लगा—

'सन्ध्या ! मेरी भेंट को तुमने इतनी तुच्छ समझी कि जब से मैंने यह रूमाल तुमको दिया है तुमने इसको कभी भी उपयोग में नहीं लिया। यह आज भी नवीन ही दिखाई दे रहा है।

'नहीं, भैय्या ! इसे उपयोग में लिया तो है।' सन्ध्या ने सहज भाव से कहा। 'लो, तुम इसे नवीन ही रखो। यह देखो ! इसी के साथ का एक पीस मेरे पास भी रखा है। यह कितना पुराना दिखाई दे रहा है। इसे उपयोग कहते हैं।' यह कहते हुए सञ्जीव ने अपनी जेब का रूमाल निकाल कर दिखाया। और उससे चाय के दाग साफ करने लगा। पश्चात् सन्ध्या ने सञ्जीव के हाथ और कपड़े पर के दाग धुलवा दिये। सञ्जीव पुनः अपने स्थान पर आकर बैठ गया। दिनेश और दीपक रूमाल का प्रसङ्ग ध्यान-पूर्वक सुन रहे थे। सञ्जीव के बैठने पर दीपक ने पूछा—

'क्या ! यह सुनहरा-रूमाल सन्ध्या को आपने दिया है ?'

'क्यों ! आप कहें तो इससे भी अच्छा एक आपको भी भिजवा दूँ।' और इसी कथन के साथ सञ्जीव हलका-सा मुस्करा दिया, परन्तु दीपक के चेहरे की हवाइयाँ उड़ने लग गईं। उसे अपने पैरों तले धरती खिसकती-सी अवगत होने लगी। दिनेश ने उसी समय सञ्जीव से कहा—

'आप कृपा कर अब किसी को कोई भी रूमाल भेंट-स्वरूप मत भेजिए। यह एक रूमाल जो आपने अपनी बहिन सन्ध्याजी को दिया है, इसने पहले से ही उत्पात मचा रखा है।'

'क्यों ! रूमाल और उत्पात ! यह कैसा समन्वय है ?' सञ्जीव ने कहा।

'हाँ, भैय्या। आपके इस सुनहरे रूमाल ने भोजन-पानी तक छुड़वा दिया है।'

'यह कैसा प्रसङ्ग है समझ में नहीं आया। दीपक जी क्या बात है ?'

पर दीपक क्या प्रत्युत्तर देता। वह तो ऐसा हो रहा था मानों प्रचण्ड आंधी या तूफान में गिर गया हो। आँखें नीचे झुक गई। शर्म से दबा जा रहा था। शान्त एवं चुप देख दिनेश ने कहा—

'सञ्जीव भैय्या ! वह क्या बोलेंगे। मैं सुनाता हूँ यह सारी राम-कथा।'

यह सुनते ही बिजली-सी द्रुत गति से उठ कर दीपक दिनेश के पैरों पर गिर पड़ा। कहने लगा—'दिनेश भैय्या ! भगवान् के लिए मुझे माफ कर दो। वास्तव में तुम दिनेश हो और मैं टिमटिमाता दीपक ही हूँ। और सन्ध्या ! तुम सन्ध्या नहीं, परन्तु मेरे जीवन की उषा हो। सन्ध्या ! भूल जाओ मेरी दुश्चिन्ता को।'

यों कहता-कहता दिनेश के पैरों पड़ गिड़गिड़ाने लगा। पर सञ्जीव के कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। सञ्जीव विस्मित होकर पूछने लगा—

'यह क्या बात है, दीपक जी ! कैसी दुश्चिन्ता ? कैसी उपा ?'

दीपक अश्रुमय हो फिर भर्राती आवाज़ में कहने लगा—'सञ्जीव बाबू ! आपने मेरे उजड़ते हुए, तहस-नहस होते हुए गृहस्थ-जीवन को बचा लिया। आपने हमारे लिए सञ्जीवनी का काम किया है। आज मुझे अनुभूति हुई कि आँखों देखा सत्य भी असत्य हो जाता है। सञ्जीव भैय्या ! आपकी भेंट, सुनहरा-रूमाल वस्तुतः सुनहरा है। आप उस मेरी घातक भ्रमना को भगवान् के लिये सुनने का आग्रह न करें। मैं सभी का दोषी हूँ।' दिनेश ने दीपक को उठाकर गले लगाया, परन्तु सञ्जीव सोचता रहा—

"कैसी भ्रमना ? कैसी सञ्जीवनी ? और इस सुनहरे रूमाल से कैसा सम्बन्ध ?"

16

रोता हुआ आईना!

ब्रजेश 'चंचल'

* * *

बड़ी बी चुपचाप आकर उनके कमरे में पीकदान रख आई, फिर चारों ओर चोर नजर से देखा, कोई नहीं था, धीमे से बोली, "न होय बड़ी अम्मा थोड़े दिन रशीदा के यहाँ चली जाओ। जाड़ों बाद जब दमा कुछ दम ले, तब चली अइयो।" बड़ी अम्मा के झुर्रियोंदार चेहरे पर कुछ वक्त तैर गया। "अल्लाह उमर बख्शे इन नदीदों को, जो आज मेरी ही परवाह नहीं करते। मैं कोई यतीम तो हूँ नहीं, जो दर-बदर ठोकरें खाती फिरूँ! अभी तो ये घर, जायदाद, सभी तो मेरे शौहर के बसाए हैं।' किसी तरह की कोई सँभाल नहीं होने पर भी बुढ़िया घर नहीं छोड़ना चाहती थी, और बड़ी बी इस घर की सबसे पुरानी नौकरानी थी, बड़ी अम्मा से दसेक साल छोटी; जो बिचारी सलमा (बहू) से आँख बचाकर हमदर्दी दिखाया करती थीं।

बड़ी अम्मा के बेटा-बहू तो तीन साल के अन्तर से पहले ही चल बसे थे। तब कितना छोटा था सुलेमान! रशीदा ने बहुत कहा था अम्मा से उसे

न मुझे आपकी हवेली की चाहत है न दौलत की। वह तो आपकी जईफी का ख्याल कर चला आया हूँ..........वरना !"

"ठीक ही तो कह रहे हैं सन्ने मियाँ, बड़ी बी ने बात साधी, और अम्मा तुमको दो रोटी के सिवा चाहिये भी क्या ?"

बड़ी अम्मा को लगा, जैसे आँधी घुस आई हो घर में। जिसमें बहुत कोशिश करने पर भी उनका पाँव जम नहीं पा रहा हो !

बड़ी बी ने अम्मा का हाथ थाम कर सीधे उनके कमरे में आराम कुर्सी पर जाकर बिठा दिया; धीमे से कहा, "अब हो गया, सो हो गया। शादी तो डॉक्टर भैय्या को ही करनी थी, सो कर ली।"

तब से बड़ी अम्मा को लगने लगा, कि वह काफी थक चुकी है ! उनके जिस्म में ताकत जैसी कोई चीज नहीं रह गई है। ऊपर वाले सारे कमरे, हॉल, बाथरूम, लेट्रिन पूरा पोर्शन उन्हीं के काम आता है। बड़ी अम्मा का अपना वही पुराना नीचे वाला कमरा और बरामदा है।

सुबह होते ही धूप सेकने के बहाने बड़ी अम्मा बरामदे में तख्त पर लगे गलीचे पर आ बैठती हैं। चाय, नाश्ता, खाना सुबह-शाम बड़ी बी आकर खुद रख जाती है। बड़ी अम्मा के वक्त की औरतें अभी भी हैं जो अक्सर ही बरामदे में आ जाती हैं; फिर चलता है चर्चाओं का दौर।

"खुदा का दिया सब कुछ है तुम्हारे पास ! फिर क्यूँ नहीं हज कर आतीं ?"

"अब नहीं रहा हज का टैम ! चारों ओर लूट-खसोट मची है।" सबसे अलग बात उठातीं बतूल की दादी, जो तकरीबन बड़ी अम्मा की ही उमर की थी। वकीलानी पोते की बीबी का मुँह तो दिखा दे एक रोज ! सुनते हैं, निकाह तो अपनी मर्जी से ही कर लाया, पर मुहल्ले की औरतों से यह पर्दा कैसा ?

जाने कैसे सुन ली सलमा ने यह बात !

फुर्ती से बरोठे में आकर बोली, "न मैं पर्दानशीं हूँ, न किसी बादशाह के हरम की हूर ! तुम जैसी जाहिल औरतों से बात करना तो दूर मैं देखना तक पसंद नहीं करती !"

उस दिन के बाद से बड़ी अम्मा के पास कोई नहीं आता अब। बड़ी बी के अलावा कोई उनसे यह पूछने वाला तक नहीं, कि उन्होंने कुछ खाया-पिया भी या नहीं !

सुलेमान को मरीजों से फुर्सत नहीं, और जब खाली होता तो सलमा के प्रोग्राम आगे से आगे बने रहते !

पिछले दो महीनों से बड़ी अम्मा की पुरानी खाँसी कुछ और ही रंग पकड़ती आ रही थी। दस-दस मिनट तक वह लगातार खाँसती ही रहतीं, और जब बलगम निकल जाता; तो ऐसी निढाल होकर लेट जातीं, जैसे हाथ-पैरों में जान ही न हो !

फिर भी अपने रुतबे को अम्मा इतना सस्ता नहीं बेचना चाहती थीं, कि सलमा के आगे घुटने टेक दे, और इतने ओछेपन पर भी नहीं उतरना चाहती थीं, कि 'सुलेमान को अपना फर्ज याद दिलाने के लिये अपने किये जा चुके एहसान को दुहरायें।'

दो-चार दिन के अन्तर से सुलेमान पूछ लिया करता था। "कैसी हो बड़ी अम्मा ?" और जब तक बड़ी अम्मा जवाब देने को मुँह खोलें, वह व्यस्त-सा दिखाई देकर चल देता था।

"वक्त वाकई बहुत बदल गया री !" बड़ी अम्मा नौकरानी से लम्बी उसांस भर कहती।

"हां मालकिन, मगर कभी-कभी वक्त के साथ समझौता करने से भी तो मुश्किलें आसान हो जाती हैं।"

"तो तेरा मतलब है मैं अपने रुतबे को रखने के लिये पहले उसके आगे-पीछे फिरूँ ! तहजीब की जिन्दगी बीताकर अब उस जाहिल जमाने के पीछे दौड़ूँ, जिसको अपने पराये की पहचान नहीं रह गई है।"

"मेरा यह मतलब नहीं मालकिन, कि आप किसी कदर झुकें, मगर इसका यह भी तो मतलब नहीं, कि बहू-बेगम से आप आंख ही नहीं मिलायें, दोनों ओर से लगातार खिंचते रहने पर तो मजबूत रस्सी भी टूट जाती है।"

पहली-पहली ईद के मुबारक मौके पर आज बड़ी अम्मा का गरूर कुछ छोटा हो गया था। उन्होंने रेशमी साटन का चूड़ीदार पाजामा, मखमली कमीज और जार्जेट की अनगिया ओढ़नी पहन अरसे बाद आईना देखा था, और तभी उनके कानों में सुलेमान की मां की आवाज आई थी—

"आदाब बजा लाती हूँ अम्मी जान !"

"खुश रहो परवर दिगार" और अम्मा ने अपनी बहू को बांहों में भर

लिया था, और इसी क्षण सुनहरी काम का अपनी शादी का गरारा, कमीज और जड़ाऊ झूमर दे दिये थे। मैंने बड़ी हसरत से इसी दिन के लिए तो रक्खे थे।

"अम्मी जान! इतने कीमती जोड़े को एक दिन में भी सुलेमान की बहू के लिए सँभाल कर रखूँगी।"

आईना सी पड़ा बड़ी अम्मा के पायताने!

तभी बड़ी बी ने आकर आदाब बजाया, "यह क्या मालकिन, ऐसे मुबारक मौक़ों पर यह रोना कैसा?"

थोड़ी-सी हमदर्दी पाकर अम्मा की आँखें और भी पनीली हो उठीं। तभी सुलेमान ईदगाह से नमाज पढ़कर लौटा तो दूसरे दरवाजे से सीधा ऊपर चला गया, और थोड़ी देर बाद ही दोनों के ठहाके कमरे में गूँजने लगे।

तभी बड़ी बी ने आकर कमरे में आदाब बजाया, और बोली, "एक बुढ़िया हुजूर को मुबारकबाद देने आई है, और नजर भी करना चाहती है कुछ!"

"कौन बुढ़िया?" सुलेमान ने पूछा।

"होगी कोई यतीम, या जरूरतमंद!" नजमा ने कहा।

"यतीम और नजर करना! कुछ समझ में नहीं आता। अच्छा चलो, मैं ही नीचे आता हूँ।"

"ईद मुबारक हो डॉक्टर साहब! और ये सँभालो अपनी अमानत!" कहकर बुढ़िया ने चाँदी का एक बड़ा-सा झुमका सुलेमान के सामने फेंक दिया।

"कौन, बड़ी अम्मा! आप!!"

'नहीं डॉक्टर साहब, आपके न कोई अम्मा है न बड़ी अम्मा! आपकी बड़ी अम्मा तो उसी दिन मर चुकी, जिस दिन आप अपनी बदली करा के यहाँ तशरीफ़ लाये।"

शर्म से नीची आँखें कर ली सुलेमान ने। बोला, "यह आप कैसी बातें कर रही हैं बड़ी अम्मा?"

"मर गई बड़ी अम्मा और दफ़न हो गया उसका जतन!" यह हवेली, जायदाद, पैसा-कौड़ी सब तुम्हारे बाप-दादाओं के हैं, जिनको मैंने अब

तक हिफाजत की, और अब जब यहाँ पर मेरी ही हिफाजत करने वाला कोई नहीं है, तो मैं यह बखेड़ा सँभालने में भी लाचार हूँ। मुझे इन पिछले दिनों में न पैसे की भूख है न जेवर की। केवल अदब से रोटी चाहिए दोनों वक्त ! जो और जगह भी मिल जाएगी।"

"बड़ी अम्मा !" लगभग रोया-रोया बोला सुलेमान।

"मैं जा रही हूँ रशीदा के घर, कभी नही लौटने के लिए। जब वक्त ने हमारा खून ही हमसे छीन लिया, तो ऐसी जगह रहने से फायदा भी क्या ?"

कहकर अपनी ओढ़नी ठीक करती हुई बड़ी अम्मा बरामदे में आ गई और पीछे-पीछे एक बड़ा-सा झोला लेकर बड़ी बी भी उन्हीं के पीछे चल दी।

"मगर सुनो तो सही बड़ी अम्मा ! बड़ी बी !"

दुःखी मन से टोकता ही रह गया सुलेमान। मगर न बड़ी अम्मा ने मुड़कर पीछे देखा और न बड़ी बी ने।

◌ ◌ ◌

17

उद्देश्यनिष्ठा

डॉ० शिव कुमार शर्मा

* * *

समाज मंथर गति से चल रहा था। सब अपने-अपने काम में लगे थे। अपने अग्रज को जैसे काम करते देखा, प्रत्येक वैसे ही काम करता चला जा रहा था। किसान खेतों में वैसे ही काम करते थे जैसे उन्होंने अपने पूर्वजों को काम करते देखा था। कारखानों में मजदूर काम करने जाते। ऑफिस में अधिकारी और बाबू लोग और स्कूलों में शिक्षक काम कर रहे थे। जैसे शुरू में उन्हें काम करना बताया था वैसे ही अब भी कर रहे थे। समयानुसार उनके पद भी बदलते परन्तु काम करने का दृष्टिकोण नहीं बदला जा रहा था। जैसे पहले काम करने का तरीका था वैसा ही तरीका अब भी बना हुआ था। अमुक तरीके से काम करना क्यों शुरू किया गया था कोई जानने में नहीं पड़ता। उस तरीके से काम करने के क्या नतीजे आ रहे हैं। कोई नहीं विचारता वैसे काम करते रहने की बजाय कोई दूसरा अच्छा तरीका भी हो सकता है—कोई कभी नहीं सोचता। आखिर यह सब कुछ क्यों? यह बात किसी के भी मस्तिष्क में

कभी नहीं उभरती। प्रत्येक वैसे ही चलता जा रहा था जैसे चलने का रिवाज बन गया था। कहाँ पहुँचना है? किधर चल रहे हैं? गन्तव्य से कितने दूर हैं? दूरी कितने दिनों में पार होगी? दूरी जल्दी तय करने के भी क्या कोई उपाय हैं? दूसरों के मुकाबले में हमारी क्या गति है? कोई नहीं सोचता। सभी पर 'रट' का एक छत्र शासन था। यह शासन इतना जम चुका था कि किसी को 'रट' के अलावा कुछ और नजर ही नहीं आता।

तभी एक लड़की पैदा हुई। 'रट' के विरोधी मौलिकता और सूझबूझ वाले थोड़े से लोग इसे पहचान पाये। वे चाहते थे कि 'रट' के स्थान पर इस लड़की का एक छत्र शासन स्थापित हो। परन्तु 'रट' में पड़ी हुई अनंत जन-संख्या ने इसे नहीं पहचाना। इसे स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। अंततः लड़की को पालने का काम एक ऐसे बुजुर्ग अधिकारी को सौंपा गया जो वान-प्रस्थी था। सेवा में रुचि रखता था। उससे कहा गया—"बाबा! अब इसका पालन-पोषण ही तुम्हारा काम है। इसी काम से तुमको रोटी-रोजी मिलेगी।" इस वानप्रस्थी ने सोचा—यह भी खूब है। भगवान् शंकर की कृपा है। प्रशासन की महाकाली से पीछा छूटा। संन्यास की तैयारी का अच्छा अवसर मिला। वह खुशी-खुशी इस लड़की के लालन-पालन में जुट गया। उसने एक छोटा सा आश्रम बनाया। अपने जैसे एक-दो वानप्रस्थियों को और मौलिकता और सूझबूझ वाले कुछेक नौजवान सेवा साथियों को अपने प्रमुख सहायकों के रूप में आश्रम में चले आने को प्रेरित किया। आश्रम का एक कार्यालय खोला गया। आश्रम की सुरक्षा, सफाई, व्यवस्था और अलग-अलग कारोबार की दृष्टि से लिखा जाना, लिपिक वर्ग और चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी नियुक्त किये गए। सभी आवश्यक साज सामान जुटाया गया। लड़की के लिए एक सुन्दर रथ की व्यवस्था की गई। बाबा ने आने वाले सभी को कहा "रट" के शासन से मुक्ति के लिए जो शहीद होने को तैयार हो और प्रशासन की महाकाली की उपासना से जिनकी तृप्ति हो गई हो वे यहाँ सेवक बनकर आ सकते हैं। जिन्हें सेवकों की भूख है उनके लिए यहाँ स्थान नहीं है। जिसे इस आश्रम कन्या की सेवा में तन-मन से जुट जाने में मजा आ सकता है उनके ही लिए यहाँ सुख है, शेष सबको यहाँ दुःख के अलावा और कुछ नहीं मिलेगा।

आश्रम चल पड़ा। बाबा को चौबीसों घंटे यही फिक्र रहती कि लड़की को कोई तकलीफ न हो। सदा सुख से रहे। उसका लगातार विकास होता

जावे। इसका इस आश्रम में ऐसी ही लड़कियों के लिए स्थापित अन्य आश्रमों की तुलना में सर्वश्रेष्ठ विकास हो। बाबा, जब लोगों को काम करते, सोचते विचारते लिखापढ़ी करते देखते तो बार बार और कभी कभी लगातार कहते—'तुम्हारे इस सब कुछ से इस लड़की के विकास में कितनी मदद मिलती है। यही इस सब कुछ वाजबियत की कसौटी है।" बाबा सभी साथियों को बुलाते और घंटों उनके साथ बैठकर उस लड़की के लिए विचार विनिमय करते। बाबा हर कभी हर किसी साथी के आसन पर जा पहुँचते और वहीं ऐसा विचार विनिमय शुरू कर देते। जब बाबू और आश्रम के भृत्य शाम को अपने अपने घर जाने लगते तब बाबा अपने खास खास साथियों को बुलाते और पूछते "किस किस को घर पर काम है ?" करीब करीब सभी उत्तर देते "किसी के घर पर काम नहीं है।" बाबा कहते, "तब बैठिये" वह घंटों बिठाये रखते। लड़की के बाबत अपने विचारों को व्यक्त करते एक-एक से पूछते, "तुम्हारी क्या राय है ?" सभी से सुझाव लेते। सुझावों पर विचार व्यक्त करते। ऐसे सुझाव जो लड़की के लिए ज्यादा हितकर नहीं होते उन्हें ज्यादा हितकर बनाने में मदद करते। रात्रि हो जाती। तारे निकल आते। बाबा कहते—"ये सारी बातें यहीं छोड़कर न जाना। इनका बोझ दिमाग में लेकर जाना। जब ऐसा बोझ लादे-लादे फिरने का व्यक्ति को अभ्यास हो जाता है तब फिर उसमें मौलिक विचार पैदा होने लगते हैं। जब मौलिक विचार पैदा होने लग जावें तो समझो सिद्ध प्राप्ति की शुरूआत हो गई। इन्सान बहुत हैं; परन्तु ऐसे इन्सान जिनके पास मौलिक विचार है वे ही इस आश्रम को कुछ दे सकते हैं। वे ही इस आश्रम कन्या के लिए हितकारी भी साबित हो सकते हैं अतः इन सब बातों पर विचार करते जाओ। भार को बनाये रखो। कल फिर बातचीत करेंगे।" अगर कोई कहता—"बाबा यह भी कोई बात है कि दिमाग को चौबीसों घंटे यों ही लदा रखें ?" तो बाबा कहकहा लगाकर हँस देते। वे कहते "जो अपने आपको घर की तरफ से 'राईट आफ' कर लेगा वही इस आश्रम की सेवा में सुखी रहेगा।" बाबा आश्रम कन्या के विकास में मदद और सुझाव लेने में नहीं चूकते। कोई आश्रम में मिलने आता तो यही बात, और बाबा-बाहर जाते और वहां जो-जो भी मिलते उन सभी से यही बात। यह बात—समय, स्थान और व्यक्ति—सभी सीमाओं को लांघ चुकी थी। बाबा को बस यही बात कि इस कन्या को बड़ी करने हेतु स्थापित इस आश्रम का एवं उसकी समस्त मानसिक भौतिक

बाहर नहीं निकली। लड़की के बिना रथ कभी भी आश्रम से बाहर नहीं निकला।

बाबा लड़की के साथ जब कभी आश्रम के बाहर निकलते तो सब से पूछकर चलते कि किस-किस का क्या-क्या काम करता आऊँ। कुछेक को जिनकी इच्छा व्यक्त होती—बाबा जरूर साथ ले जाते। जिन्हें छोड़ जाते उन्हें काम बता कर जाते। लौटते ही लड़की की बात उन्हें सुनाते। पीछे वालों की बातें सुनते। विचारों का लेखा-जोखा मिलाते और फिर काम पर जुट जाते। ऐसे ही जब अन्य लोग आश्रम के काम से बाहर जाते तब भी हुआ करता था। यहाँ तक कि कोई अपने निजी काम से भी बाहर जाता तो बाबा उस काम के होने में अपने प्रभाव को काम में लाने में कभी कोताही नहीं करते। यों तो प्रत्येक अपने व्यक्तित्व में अपनी शक्ति और सामर्थ्य को स्वीकार करते हुए बाबा के प्रभाव और शक्ति से स्वयं को ओतप्रोत मानता था। बाबा कभी-कभी यह भी कहते—"मैं चला जाऊँगा, परन्तु जब मैं इस आश्रम को छोड़ूँगा तो तुम लोग अपने में से ही मेरे जैसे कई एक को पा लोगे। मेरा यहाँ लड़की की सेवा के साथ लड़की के मेरे ही नमूने के कई सेवक बना कर ही रवाना होने का जिम्मा है।"

अगर वे साधन इनके काम में नहीं आ रहे होते तो उपलब्ध हो जाते। काम करते रहने वाले अपने आप काम करते रहे। यह बाबा की दृष्टि से ठीक था। अगर किसी को अपने आप काम करने की आदत नहीं थी तो उसके लिये बिना काम किये भी आश्रम में रहकर अपना गुजारा चला सकने में कोई कठिनाई नहीं थी। बाबा कभी किसी से कुछ नहीं पूछते। इन बाबा को ऐसी बातें अच्छी नहीं लगती जो इनके खुद में आनंद और आराम के सहायक नहीं होती थी। जो लोग इनके इर्दगिर्द घूमते रहते वे धीरे धीरे इनके निकट पहुँचने लगे। इन बाबा के सुख की क्रमशः वृद्धि होने लगी। लड़की के स्थान पर आश्रम का केन्द्र क्रमशः बाबा ही बनने लगे। शायद इन्होंने यह मान रखा था कि आश्रम मेरे लिये ही स्थापित हुआ है। बाबा का जब मन होता रथ मंगवा लेते। लड़की के लिये यह रथ आया था, यह बात बाबा को याद ही नहीं आती। लड़की के बैठने की जगह पर स्वयं बैठते और यात्रार्थ चल पड़ते। आश्रमवासियों को बाद में पता लगता कि बाबा बाहर गये हैं। कोई नहीं जानता कि बाबा कब लौटेंगे। यकायक बाबा प्रकट हो जाते। बाबा कहाँ गये थे—किसी को कोई पता नहीं। बाबा कभी नहीं बतलाते कि कहाँ गये थे। आश्रम का क्या काम कर के आये हैं-आश्रमवासियों को पता भी नहीं लगता। जिसके लिये यह आश्रम कायम हुआ था क्रमशः उस लड़की की संभाल घटने लगी। जो उसकी संभाल यह जानते हुए किया करते थे कि यह आश्रम उसी के लिये तो कायम किया गया है वे ही उसकी संभाल रखते थे। पुराने आश्रमवासी भी धीरे-धीरे बदल चुके थे। नवीन जो आये उन्हें कभी नहीं बतलाया गया कि यहां उन्हें किस लिये बुलाया गया है? क्या काम कैसे करना है? न कभी पूछा जाता कि आप क्या कर रहे हैं? आश्रमवासी अपने-अपने रंग में मस्त रहते। बाबा सिर्फ एक दो व्यक्तियों से ही बात करते, वह उस लड़की के विकास के सम्बन्ध में नहीं। आश्रम की लड़की को प्रथम बाबा सँभाल सँभाल कर रखते थे। उसको कहीं कुछ हो न जाये इसी की उन्हें फिक्र थी। अब वही लड़की अकेली इधर-उधर घूमती फिरती। जहाँ उसका मन आता बैठती। थकने पर जहाँ कहीं सो जाती। उससे कोई कुछ नहीं पूछता सिवा उनके, जो यह जानते थे कि हमारा अस्तित्व इस लड़की के लिये है। परन्तु इसमें भी इन बाबा का दबाव नहीं था। आश्रम की सफाई, बगीचे की देखभाल और अन्य कार्यकर्ताओं के काम में मदद देने वाले भृत्य वर्ग धीरे

धीरे धीरे अन्यत्र काम पर लगा दिये गये। केवल वेतन के चुकारे के दिन ही वे आश्रम में नजर आते।

पहले बाबा लोगों को आश्रम के कार्यक्रम और व्यवस्था में सुधार के लिए आमंत्रित करते थे। पर कुछ ऐसे आदी हो गये थे कि उन्हें यहाँ आये बिना सुहाता नहीं था। अब वे खुद ही आना तय करके आश्रम में आते। वे अपने ही स्तर पर चर्चाओं का श्रीगणेश करते। आश्रम के सुधार और कन्या के विकास क्रम की बातें भी करते। परन्तु बाबा उसमें अपनी ओर से कुछ नहीं बोलते। कभी कभी उन चर्चाओं के बीच में से उठकर चल देते और फिर लौटते ही नहीं। कभी कभी तो वे ऐसी चर्चाओं में शुरू से आखिर तक किसी भी समय दर्शन नहीं देते। आश्रम के पुराने कार्यकर्त्ता जो लड़की के विश्वासपात्र थे-काना-फूसी में कहते कि कहीं बाबा का झुकाव विरोधी तत्वों की ओर तो नहीं है? यों ही दो वर्ष बीत गये। बाबा के संन्यास का समय आ गया। एक दिन सभी आश्रमवासी इकट्ठे हुए। बाबा की विदाई का कार्यक्रम रचा गया। वे भी संन्यासी बनकर वन को रवाना हो गये।

: 3 :

कुछ समय तक आश्रम फिर से बिना बाबा के चला। लड़की की खबर-गीरी का सिलसिला उठ चुका था। आश्रमवासी अपने-अपने रंग में मस्त थे। तभी खबर उड़ी कि आश्रम संचालक मंडल ने निर्णय ले लिया है। जिन बाबा के लिये निर्णय लिया गया है वे आ रहे हैं। दूसरे ही दिन बाबा आश्रम में आ पहुँचे। कार्य भार संभाल लिया। निश्चित आसन पर विराज गये। सब आश्रम-वासियों को बुला भेजा। बाबा की कुटिया में सभी एकत्रित हो गये। प्रत्येक ने परिचय दिया। जिन जिन से पुराना परिचय था उनसे पुरानी यादों के आधार पर निकटता स्वीकार की। आश्रम के कार्यक्रम की जानकारी प्राप्त की। उसकी सार्थकता बढ़ाने के लिये लोगों के विचार मालूम किये। वह लड़की जिसके लिये यह आश्रम स्थापित किया गया था उससे सम्पर्क साधा।

आश्रम के कार्यक्रम में परिवर्तन आने लगे। क्रमशः सब कार्यकर्त्ताओं को बाबा पहचानने लगे। उनके स्वभाव से अवगत हुए। आश्रम की व्यवस्था में उनकी सोच और महत्त्व को समझा। प्रत्येक को यह आभास होने लगा कि यह आश्रम एक बार फिर अपने अस्तित्व के उद्देश्यों की दृष्टि से सजग

हो रहा है। आश्रम के ऐसे कार्यकर्त्ता जो पहले यह समझते थे कि काम किस लिये करें, वे भी सजग होने लगे।

बाबा छोटे से बड़े तक सब प्रकार के कामों को देखते। साथियों के आसन पर जाकर भी समस्याएँ पूछते और विचार करते। यह भी ध्यान में रखते कि प्रत्येक कार्यकर्त्ता और उसके कार्य एवं आश्रम के कार्यक्रम से लड़की के विकास में किस सीमा तक मदद मिल रही है। आश्रम संचालक मंडल जिसमें यह भावना पैदा हो गई थी कि आश्रम अपने कर्त्तव्यों की दृष्टि से कमजोर हो गया है उसके विचारों में भी परिवर्तन आये, इस हेतु बाबा भरपूर कोशिश करने लगे। कुछेक अवसरों पर बाबा ने आश्रम में ऐसे काम कर दिखाये जिससे सभी को यह लगा कि यही बाबा और इनके साथी ही इन्हें यों इतने कम समय और साधनों से पूरा कर सकते। एक बार फिर आश्रम का समाज में आदर बढ़ा। आश्रम में लोगों को आमन्त्रित किया जाता। बाबा उनकी उपस्थिति का पूरा पूरा लाभ उठाते। अपने विचारों से आगन्तुकों को प्रभावित करते। आश्रमवासियों का हौसला बढ़ाते। वह लड़की जो पहले अकेली इधर-उधर घूमती फिरती थी और जिसकी सँभाल समाप्त सी हो गई थी, एक बार फिर उस आश्रम का केन्द्र बनी। बाबा शौकीन थे। उन्होंने उस लड़की को नहलाने धुलाने की, आराम की, सुख और आनंद की पूरी-पूरी व्यवस्था की।

अब वह लड़की लिपस्टिक लगाती। आँखों को भीमसेनी काजल से सुन्दर बनाती। चेहरे पर पाउडर का प्रयोग करती। नयी-नयी पोशाकें पहनती, उसके साज सामान को व्यवस्थित रखने के लिए इन्तजाम किया गया। उसे गर्मी के कष्ट से बचाने के लिए व्यजन लगाये गये। उसके रहने का स्थान एक बार फिर से रंगीन नजर आने लगा। बाबा कभी-कभी कह बैठते–'मैं यहाँ थोड़े समय ही रह पाऊँगा अन्यथा इस आश्रम को चमन कर देता।' सारा आश्रम एक बार फिर आकर्षक बन गया। आश्रम के महत्त्व को समझने वाले आश्रमवासी जो पूर्व बाबा की इस आश्रम के प्रति आस्था पर संशय कर निरुत्साह की अवस्था में काम किया करते थे उनमें नवीन उत्साह का संचार हुआ। जो आलसी हो गये थे उन्होंने भी महसूस किया कि यों गुजारा नहीं चलेगा। आश्रम में एक बार फिर चहल-पहल नजर आने लगी। काम वाले लोगों का आश्रम में तांता बँधा रहता। अलग अलग उन

के लोग भी फुर्सत के समय आश्रम की ओर आते और प्रेरणा प्राप्त कर वापस लौटते । लड़की अब सात वर्ष की हो गई थी । उसको अपना मान होने लगा था । उसके पास अपने लिए आवश्यक साधन और सौन्दर्य प्रसाधन सभी उपलब्ध थे ।

तीसरे बाबा का कार्यकाल बहुत थोड़ा रहा । उनके भी संन्यासी बनने का समय आ गया । कोई नहीं चाहता था कि ये बाबा जावें । परन्तु जब संन्यास का समय आ गया तो बाबा को जाना ही था । बिदाई कार्यक्रम आयोजित हुआ । तीसरे बाबा भी बिदा हो गये । एक बार फिर इस आश्रम में सूनासूना-सा लगने लगा । आश्रमवासी जब कभी आपस में बैठ कर बातें करते तो यह बात जरूर होती–"चौथे बाबा कौन होंगे ? चौथे बाबा कब आयेंगे ?"

: ४ :

आखिर एक दिन खबर आई कि आश्रम के चौथे बाबा कौन होंगे, यह तय हो गया है । बाद में किसी अन्य सूत्र से मालूम हुआ कि चौथे बाबा अमुक दिन इस आश्रम का भार सँभालेंगे । आखिर वह दिन आ गया । चौथे बाबा का आश्रम मे पदार्पण हुआ । आश्रमवासियों ने इनका स्वागत किया । बाबा अपने पूर्व निश्चित स्थान पर पहुँचे । आसन ग्रहण किया । कार्यभार सँभाल लिया ।

अब तक के इस आश्रम के पूर्व तीनों बाबाओं की तुलना में चौथे बाबा की आयु सबसे ज्यादा थी । परन्तु इस आयु में भी इन बाबा की चपलता अपने आप में इनकी एक विशेषता थी । आश्रम के लोगों से जब बाबा बात करते तो शुरू के दिनों में हमेशा यही कहते– "आश्रम संचालक मंडल ने कहा है, बस आपको हमने वहाँ भेज दिया है आश्रम की सभी समस्याओं को आप सुलझा लेंगे । आश्रम की स्थापना का उद्देश्य आपके कार्यकाल में निश्चित ही पूर्ण होगा ।" फिर बाबा अपने साथियों को अपनी कहानी सुनाते । किस प्रकार उन्होंने एक आश्रम में जहाँ वे पहले थे धुँआधार काम किया था । किस प्रकार समाचार पत्रों ने उस समय उनकी तारीफ में अनगिनती "कालम" रंग दिये थे । किस प्रकार उस आश्रम का संचालक मंडल इनसे प्रसन्न था । किस किस प्रकार से संचालक मंडल का सदस्य तब मुक्त कंठ से उनकी प्रशंसा किया करता था ।

बाबा के इन शब्दों को आश्रम के कार्यकर्त्तागण सुनते । बाबा इन बातों को जब कभी भी किसी एक से या अधिक से मिलते तो सुनाते । इन बातों को सुनने का काम आश्रमवासियों ने बड़ी उदारता के साथ चालू रखा ।

बाबा की अपनी कारगुजारियों की कथा अविरल रूप से चलती रही। क्रमशः कुछ लोग इन बातों से थकने लगे। खास तौर से वे लोग जो आश्रम की सुव्यवस्था और उसके उद्देश्यों की प्राप्ति में रुचि रखते थे। धीरे-धीरे बाबा ने अपनी आत्मकथा सुनाने की दृष्टि से श्रोता वर्ग का केन्द्र स्थल बदलना शुरू किया। अब आश्रम के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं की बजाय आश्रम व्यवस्था का लेखा-जोखा रखने वाले लोगों, लिपिक वर्ग और भृत्यवर्ग को बाबा ने अपनी कहानियाँ सुनाना शुरू किया। ये बाबा की कहानियाँ बड़ी रुचि के साथ सुनते। बड़ी उत्कंठा के साथ सुनते। धीरे-धीरे इनका काम बाबा की कहानियाँ सुनना ही रह गया। बाबा जब अपनी कहानियाँ सुनाना शुरू करते तो वे खुद ही आनन्द विभोर हो जाते। श्रोताओं को लगने लगा कि बस यही हमारा काम है।

आश्रम में बाबा के प्रमुख सहायक जब आश्रम के कार्यक्रम सम्बन्धी पत्र कारवाई के लिए कार्यालय के कर्मचारियों को देते तो शुरू में वे बेमन से उन्हें स्वीकार करते। धीरे-धीरे उन्होंने आश्रम के प्रमुख सहायकों को बुराभला कहना शुरू किया। बाद में यह स्थिति पैदा हुई कि इनका सबका काम बाबा के इर्दगिर्द घूमते रहने के अलावा कुछ न रहा। आश्रम का लेखक वर्ग, और भृत्यवर्ग अपने स्थान पर नहीं मिलते। आश्रम का ऐसा कार्य जो इनके द्वारा ही होने का था रुक जाता। कार्यालय का कार्य ठप्प पड़ने लगा। क्रमशः प्रमुख कार्यकर्त्ताओं में से कोई जब सेवकों को आश्रम सम्बन्धी पत्र कारवाई हेतु देते तो वे उन्हें लौटा देते? कभी-कभी कोई उन पत्रों को फेंक देता। अब वे यह मानने थे कि यह काम हमारा नहीं है। प्रमुख सहायकों के पारिश्रमिक के भुगतान से भी उन्हें क्रमशः कोई मतलब न रहा।

बाबा को समझना वास्तव में टेढ़ी खीर था। बाबा अपने आसन पर जब बैठते तो एक ही मिनिट में कई मुद्रा बदल लेते। जब बात करते तो एक में असंख्य बातें शामिल कर लेते और उनमें एक भी बात पूरी नहीं करते। पूर्वाह्न में काम करते हुए बाबा अपने साथियों से कहते "इस काम को अपराह्न में करेंगे।" अपराह्न में विस्मय के साथ पता लगता कि बाबा आश्रम से बाहर यात्रार्थ निकल गये हैं। वे आश्रम के कार्य से बाहर जाते, परन्तु किसी को पता नहीं लगता कि किस काम से बाहर गये हैं। कहाँ-कहाँ गये थे। कितना-कितना काम करके लौटे हैं। बाबा में चपलता इस सीमा की और इतनी अधिक थी कि किसी एक काम, या एक जगह, पर बाबा टिक ही नहीं सकते।

आश्रम के इस प्रकार के वातावरण में एक दिन यह पता लगा कि वह लड़की जिसके लिये यह आश्रम स्थापित हुआ था वह कई दिन से आश्रम में नजर नहीं आ रही है। आश्रमवासियों में खलबली मच गई।

बाबा की दृष्टि में यह बात लाई गई। बाबा ने तत्काल उत्तर दिया—"ऐसी कौन-सी नई बात है? अब वह बड़ी हो गई, जायेगी नहीं तो क्या यहीं बैठी रहेगी।"

बाबा के इन शब्दों से कतिपय पुराने एवं प्रमुख कार्यकर्त्ता जो इस आश्रम की स्थापना के उद्देश्य से अवगत थे, स्तब्ध रह गये। उन्होंने समझा शायद बाबा स्वयं भी नहीं चाहते कि समाज पर आश्रम की उस लड़की का एक छत्र शासन स्थापित हो और यह आश्रम इसी उद्देश्य के लिए कार्य करता रहे।

आश्रम अब भी चल रहा था। पुराने कार्यकर्ता कभी अपने आप से पूछते—ये आश्रम अब किस लिए चल रहा है? हम अब यहां क्यों बैठे हैं?

हुई खर्राटे ले रही है। संन्यासी बाबा को हैरानी हुई। उसने एक बार फिर इस उद्देश्य से कि कहीं वह लड़की भी उसे दृष्टिगोचर हो जाये, एक बार फिर सारे आश्रम का चक्कर काट डाला। परन्तु व्यर्थ।

बाबा ने आश्रम के एक मुख्य भृत्य से पूछा वह लड़की कहां गई। उसने उत्तर दिया "वह तो यहां से कभी की चली गई। बाबा को जब मालूम पड़ा था तो उन्होंने यही कहा था—बड़ी हो गई जायेगी नहीं तो क्या यहीं बैठी रहेगी।"

बाबा आश्रम से बाहर निकला। उसने अपनी झोली से कागज एक पुर्जा निकाला। उस पर कुछ लिखा और आश्रम के सामने के ताल में प्रवाहित कर दिया।

इस कार्य को आश्रम के पुराने कार्यकर्ताओं में एक ने दूर से देखा। वह दौड़ा-दौड़ा बाबा के पास पहुँचा। बाबा को वह पहचान न सका, परन्तु पूछा "बाबा! आपने यह क्या किया।" बाबा ने उत्तर दिया "वही जो करना चाहिए था।" इस उत्तर पर वह पहचान गया कि ये आश्रम के पहले बाबा हैं। उसने पूछा "उस कागज के पुर्जे में क्या था?" बाबा ने कहा "क्यों पूछते हो, जो होना चाहिये था वही था।" परन्तु वह न माना और बतलाने के लिए बार-बार आग्रह किया। बाबा ने अंततः उत्तर दिया "न पूछना ही अच्छा था। परन्तु नहीं मानते हो तो सुनो—वह एक कागज का पुर्जा था। उस पर मैंने उस लड़की का नाम—'उद्देश्यनिष्ठा' लिख कर जल नारायण को समर्पित कर दिया। परन्तु विश्वास रखो 'उद्देश्यनिष्ठा' डूबेगी नहीं, वह, निश्चित ही एक दिन किनारे लग कर रहेगी।"

बाबा का गला रुँध गया। आगे कुछ न कह सके। वे तेजी से आगे बढ़े और अपनी जमात में शामिल हो गये।

○○○

स्वभाव····। चित्रा उच्च कुल में जन्मी है। उसके पिता बड़े अफसर हैं। मगर रूढ़िवादी, उनकी मान्यताएँ पुराने रिवाजों को प्रोत्साहन देती है। चित्रा ने पिता से भी बोलना कम कर दिया है। ऐसा क्यों ?

क्या चित्रा ने अपना जीवन निस्सार समझ लिया है? वह सदा अन्धेरा पसन्द करती है। उसके शयनागार का दीप सदा बुझा रहता है और चुपचाप सोयी रहती है। क्या वह सुबह की इन्तजार नहीं करती ? नहीं ······ कदापि नहीं ···। वह शायद सोच चुकी है, 'उसकी सुबह बीत गयी है। अब सीन्द साँझ ही उसके लिए शेष रह गई है।'

लेकिन उसने सुबह देखी ही कब थी। बिना सुबह ही शाम आ गई और उसे होश तक न रहा।··· हाँ····चित्रा बाल विधवा है। छोटी उम्र में ही उसकी शादी कर दी गई थी। बड़ी बहिन के साथ ही चित्रा का लगन कर दिया गया था। दोहरे व्यय से बचने की खातिर। अब चित्रा की उम्र सतरह वर्ष है। दो वर्ष हुए उसके प्राणेश्वर का देहान्त मोटर की टक्कर से हो गया था। चित्रा के पिता का कहना है कि "आज तक मेरे खानदान में नाते नहीं हुए ·········। एक सरदार की लड़की ने कभी दो ब्याह नहीं रचे····। सभी राजपूतों की यह राय रही है। चित्रा का पति मर चुका है तो····वह आजीवन विधवा रहेगी········। उसके रहने के लिए मेरा घर है, धन है, सम्पत्ति है, जमीन है और जायदाद है।"

यह सब सुनते ही यौवनांगिनी चित्रा का रोम-रोम थर्रा उठा।" तो क्या वह स्वयं विवाहित है। कब हुआ था उसका लगन ···। उसका पति···· ओह वही जो एक साल यहाँ आया था। माँ ने मुझे सजाया था और कहा था बेटी यहाँ रहो ·· मेहमान हैं। श्यामल रंग में पुता····पतला सा लम्बा सा····। नहीं····नहीं ···मुझे नहीं मालूम वह कौन था ?

चित्रा को अपने विवाह का होश ही नहीं था। कभी उसने सोचा भी नहीं था कि उसकी शादी हो चुकी है। लोग कहते थे वह सुनती थी। मगर उसे भी एक भ्रम सा बैठा था··· ···।

'कब हुई थी उसकी शादी ··?'

'छोटी उम्र में'।

'और अब उसका पति····?'

इस दुनियाँ में नहीं रहा ···।' और एक दिन उसकी माँ ने उस यौवनांगना के आभूषण उससे पृथक् किये तो चित्रा सहम उठी··· 'माँ···यह क्या कर रही हो····?'

'बेटी ···अब····ये तेरे न रहे। तेरा सुहाग लुट गया है। अब तू वि··· ।' 'माँ····'और वह इतना ही कहकर रह गयी थी। बेटी चित्रा के लुटे सुहाग से माँ अपने आपको खो बैठी····। कुछ दिनोपरान्त वह मृत्यु का शिकार हो गई। इसलिए ही तो चित्रा के शयनगृह में दीप नहीं जला। वह न हँस सकती ·· न घूम सकती ·· न कहीं बाहर झाँक सकती है। निगाह उठा कर संसार नहीं देख सकती····। वह शृंगार नहीं कर सकती ··· आभूषण नहीं पहन सकती····माँग नहीं भर सकती··· ।

उसका भेष, उसका हुलिया तो वही घिसा-पिटा है और उम्र भर वही रहेगा। खाली हाथ, निराश चेहरा····नम आंखें, कमजोर दिल, झुकी पलकें····, बिखरा जूड़ा, सुहाग रहित मांग, उलझा मन और खामोश क्षण···· ये ही उसकी जिन्दगी के पात्र हैं। सुनसान व शान्त कमरा अन्धकार से लिपापुता,····निस्तब्ध वातावरण, संगीन दीवारें, कठोर बन्धन और इन्हीं में बँधी तड़फ-तड़फ कर प्राण देगी। आजन्म वैधव्य में रहेगी। उसे बाहर देखने का अधिकार नहीं।

'मगर क्यों ?'

'क्या गुनाह किया है उसने ?'

'क्या अपने स्वामी को स्वय उसी ने मारा है ?' क्या चित्रा ने खुद ही उसे चुना था ? मगर वह कुछ भी तो नहीं जानती। फिर उसका दोष···· जिसकी सजा वह इस तरह पा रही है !

'उसकी किस्मत ······ यही न !'

नहीं । रूढ़िता व सामाजिक बन्धन ही उसकी किस्मत है। इन्हीं बन्धनों ने उसका जीवन निस्सार कर दिया है। इन्हें हटा लिया जाय तो सुन्दर चमक सकता है। मगर चित्रा का बाप कट्टर है। चित्रा का गाँव कुछ दूर रह गया है। चित्रा से मेरा लगाव है। मैं स्वयं विवाहित हूँ। पर हूँ विधुर···· । ठीक चित्रा सी मेरी भी कहानी है। यह बाल-विवाह का परिणाम है। मैं चित्रा का जीवन चाहता हूँ। चित्रा जो भूल कर बैठी है, मैं सुधारना चाहता हूँ। समाज का मुकाबला करके ··उसके पिता की भूल मिटा सकते ।

मेरे पिता ने मेरा सम्बन्ध अन्य जगह कर दिया है। वे नई शादी चाहते हैं। वह यौवना मोहिनी है। मगर सोचता हूँ मोहिनी कँवारी है। उसके लिए वर बहुत हैं। मगर चित्रा का कोई नहीं है। इसीलिए मैं भाग आया हूँ। पिताजी को इन्कार कर दिया है कि मोहिनी को मैं नहीं अपना सकता। 'चित्रा''''ओ चित्रा।' खामोश दरवाजे से टकराकर मेरी आवाज लौट आई। मगर दूसरे ही क्षण दरवाजा खुला''''''एक भयभीत आवाज उभरी।

'कौन'''' ?

'मैं हूँ चंचल।'

'रामगढ़ी वाला चंचल! आइये चंचल बाबू। इतनी रात गये।'

"हा यूँ ही चला आया।"

'कौन आया है चित्रा बाई ?'

'चंचल बाबू''''।' चित्रा ने कहा।

'ह ह आइये''''बाबू''''।;

'हां रामू दादा कैसी है तबियत।' मैं चित्रा के वृद्ध नौकर से बोला।

'बस, आपकी महर से ठीक हूँ।'

और मैं आगे बढ़ गया चित्रा के साथ-साथ। चित्रा ने मुझे अपने पास वाले कमरे में ठहराया। और दोनों कमरों के बाहर रामूदादा की चारपाई थी जहां वह सोया हुआ था। चित्रा भोजन लाई। मैंने देखा कि मेरे इस कमरे को छोड़ किसी कमरे में रोशनी नहीं थी। यहां भी हल्का सा दिया राम की प्रतिमा के आगे जल रहा था जिसमें तेल शायद अब तक समाप्त होने को था। पवन के झोंकों से वह कांप रहा था। और एक झोंके से वह मिट भी गया।

'चंचल और चित्रा तुम भी ··· ····इधर आओ।'

हम इनके साथ बाहर आए तो वे बोले—

'चित्रा वो देखो ···इस अन्धकार की रात के बाद वह सुबह आ गई है। ईश्वर करे अब तुम्हारे जीवन में ऐसी रातें न आएं। मैं खुश हूं चित्रा बहुत खुश ··· । चंचल तुम्हारा चिराग है। रोशनी है। सुबह है।'

वे पलक मूंदे पूर्व की तरफ मुंह किए बोले जा रहे थे।

'चंचल··· चित्रा तुम्हारे साथ है। तुम्हारा जीवन है। तुम मेरे लाड़ले हो चंचल···· । मेरे घर तुम्हीं मालिक हो।'

'चित्रा जाओ, अपनी मांग भर लो····हँसलो चित्रा हँसलो।'

मगर चित्रा वहां न थी। हम नीचे उतर आए। चित्रा अपने कमरे की खिड़कियां खोलने में व्यस्त थी।

'चित्रा········ ।'

वह धीरे-धीरे मेरे पास आई ? कदमों में झुकने लगी कि मैंने उसे बाहों में भर लिया।

आज भी जब शाम को चित्रा दिया जलाती है तो एक कहकहा-सा लगाती है····"कैसे थे वे खामोश क्षण········"

'जो खामोश न रह पाए···· ।" मैं कह उठता हूं और हम मुस्करा उठते हैं।

○ ○ ○

जब तक कालेज में पढ़ा, उसने किसी प्राध्यापक की डाँट नहीं बर्दाश्त की। कक्षा में वह सदा मुँहफट रहा था, इसलिये साथ के छात्र उसे 'हीरो' कहने लगे थे। उसके मस्तिष्क पर इस शह का ऐसा असर हुआ कि वह नेतागिरी की ओर बढ़ने लगा। उसने महाविद्यालय का हर संभव चुनाव लड़ा और विजय भी पाई। वह बड़े गर्व से कहा करता था कि "कालेज की हड़ताल करवाने में उसने विगत सभी वर्षों के रिकार्ड तोड़ डाले हैं।" ऐसी कोई कक्षा महाविद्यालय में न थी जिसे वह दो वर्ष में भी लाँघ पाया हो। इस जिन्दगी का वह अभ्यस्त हो चुका था। उसने कितनी ही बार इस विषय पर भी सोचा था लेकिन हर बार उसे यही लगा था कि "अपने रास्ते पर वह इतना आगे बढ़ चुका है, कि जहाँ से फिर पाना असम्भव है, फिर जब तक तोड़-फोड़ और हड़ताल की कार्यवाही न हो, बड़े लोगों पर असर नहीं पड़ता; किशोरों और नवयुवकों के समाज में 'हीरो' का पद भी सुरक्षित नहीं रह सकता।" आखिर एक दिन वह भी आया जब ऐसी ही एक हड़ताल ने उसे कालिज से सदा के लिये निकलवा डाला। खाने-कमाने की चिन्ता उसको हुई और बहुत खोज करने के बाद एक दिन शहर की चीनी मिल में उसे क्लर्क की नौकरी मिल गई।

चीनी मिल में उसे कई वर्ष बीत गए हैं। क्लर्क तो वह नाममात्र को रहा है, असलियत में वह एक नेता रहा है, उन मजदूरों का जो उसके संकेत-मात्र पर आग में कूद सकते हैं।

19

खिलखिलाता गुलमोहर

श्रीनन्दन चतुर्वेदी

* * *

उसको लगा, वह किसी अंधेरी गुफा से निकल आया है। अहाते में खड़ा कनीर उसे हँसता हुआ लगा। दूरी पर खड़े गुलमोहर को देखकर उसे अनुभव हुआ जैसे वह खिलखिलाकर हँस रहा है और उसकी कल्पना में हँसी का एक इन्द्र धनुष कनीर से गुलमोहर तक अनायास तन गया। उसे पहली बार आश्चर्य हुआ, न जाने कितनी बार इन्हें इस तरह देख कर भी वह इतने स्वस्थ रूप में क्यों नहीं स्वीकार सका था? इस लाली को उसने कितनी ही बार देखा था। हर बार इसने उसे रक्तपात की याद दिला कर केवल तोड़-फोड़ के लिये उकसाया था। उसे लगा, एक बहुत बड़ा बोझ उसके कंधों से उतर गया है, मानसिक तनाव शान्त हो गया है और वह स्वस्थ बयार के झोंके का स्पर्श पाकर रोमांचित हो उठा है।

जब तक कालेज में पढ़ा, उसने किसी प्राध्यापक की डाँट नहीं बर्दास्त की। कक्षा में वह सदा मुँहफट रहा था, इसलिये साथ के छात्र उसे 'हीरो' कहने लगे थे। उसके मस्तिष्क पर इस शह का ऐसा असर हुआ कि वह नेतागिरी की ओर बढ़ने लगा। उसने महाविद्यालय का हर संभव चुनाव लड़ा और विजय भी पाई। वह बड़े गर्व से कहा करता था कि "कालेज की हड़ताल करवाने में उसने विगत सभी वर्षों के रिकार्ड तोड़ डाले हैं।" ऐसी कोई कक्षा महाविद्यालय में न थी जिसे वह दो वर्ष में भी लांघ पाया हो। इस जिन्दगी का वह अभ्यस्त हो चुका था। उसने कितनी ही बार इस विषय पर भी सोचा था लेकिन हर बार उसे यही लगा था कि "अपने रास्ते पर वह इतना आगे बढ़ चुका है, कि जहाँ से फिर पाना असम्भव है, फिर जब तक तोड़-फोड़ और हड़ताल की कार्यवाही न हो, बड़े लोगों पर असर नहीं पड़ता; किशोरों और नवयुवकों के समाज में 'हीरो' का पद भी सुरक्षित नहीं रह सकता।" आखिर एक दिन वह भी आया जब ऐसी ही एक हड़ताल ने उसे कालिज से सदा के लिये निकलवा डाला। खाने-कमाने की चिन्ता उसको हुई और बहुत खोज करने के बाद एक दिन शहर की चीनी मिल में उसे क्लर्की की नौकरी मिल गई।

चीनी मिल में उसे कई वर्ष बीत गए हैं। क्लर्क तो वह नाममात्र को रहा है, असलियत में वह एक नेता रहा है, उन मजदूरों का जो उसके संकेत-मात्र पर आग में कूद सकते हैं।

पड़ा । अनुभव उसका बहुत बढ़ चुका था इसलिये वह अब संघर्ष को चालू रखने के लिये कारण नहीं, बहाने खोजने लगा था । बहाने बनाने में उसको देर न लगती । पहले बोनस था, अब वेतन बढ़ाने की माँग रखी और साथ ही मजदूरों के स्थायीकरण की; माँग मंजूर न हुई और हड़ताल फिर शुरू हो गई ।

× × × ×

संघर्ष समिति की गुप्त बैठक में वह आज पूरी योजना देकर आया था । फैक्ट्री को कल फिर आग लगादी जाएगी, यह प्रस्ताव संघर्ष समिति ने पारित कर दिया था । पेट्रोल की व्यवस्था की जा चुकी थी और अन्य दाहक सामान केरोसिन आदि को भी । पुलिस से भी लोहा लेना पड़ेगा, वह जानता था इसलिये हथगोले और देशी बम भी उसकी संघर्ष समिति जुटाकर उचित आदमियों को वितरित कर चुकी थी ।

घर पर वह थोड़ी देर को आया था, उसको यहाँ एक कार्यकर्त्ता की प्रतीक्षा करनी थी और उसके आते ही योजना के एक और चरण को पूरा करने के लिये चल देना था । पिछले तीन दिन से वह इतना व्यस्त रहा कि समाचार-पत्र तक न पढ़ पाया था । मेज पर पड़ा दैनिक उसने देखते ही उठा लिया । देश के हर भाग से तोड़-फोड़ के समाचार थे । कहीं मजदूरों ने रेल की पटरियाँ उखाड़ दी थीं । उसने फिर देखा, "रेमन की बड़ी फैक्ट्री में आग, कई लाख का नुकसान ।"

"ये पूँजीपति इसी तरह ठिकाने लगेंगे !" वह प्रसन्न होकर बुदबुदाया । उसकी आँखों के आगे अपनी चीनी मिल की भूतपूर्व आग का दृश्य भविष्य से एकाकार होकर नाच गया । तोड़-फोड़, भाग-दौड़, लाठी, गोली, हवा गोले, धमाके, कोलाहल और अस्पताल । फिर भूखे मरते मजदूर और अदालत की पेशियां ।

"बेकारी क्यों ?" तब तक उसकी आँखें समाचार पत्र के इस मोटे शीर्षक पर जा टिकीं । पूरा लेख था लेकिन इतना छोटा कि जल्दी में भी पढ़ा जा सकता था । लेख इतने रोचक ढंग से लिखा गया था कि पढ़ने लगा तो वह उसी में रम गया ।

लेखक ने बेकारी के कई कारण बताए थे । बेकारी का बहुत बड़ा दोष उसने हड़तालों पर रखा था । देशव्यापी स्तर पर हड़ताल और उनके

प्रत्यक्ष तथा दूरगामी प्रभावों की चर्चा की थी। विश्लेषण करते हुए एक-एक पहलू देखा गया था। लेखक ने लिखा था, "हड़तालों से उत्पादन में एकदम से कमी आती है और परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय को ठेस पहुँचती है। राष्ट्रीय आय की क्षति से भुगतान नहीं हो पाते। बेकार तो आये दिन बढ़ते चले जाते हैं, करने के लिये काम भी बहुत है लेकिन काम लेने के बाद पारिश्रमिक कहाँ से दिया जाए? समस्या तो यह है।"

उसको लेखक की बात वजनदार लगी। लेख में केन्द्रित हुआ उसका मस्तिष्क अगली पंक्ति पर दौड़ गया। "देश के पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण औद्योगिक संघर्ष है," उसमें लिखा था। कुछ आँकड़े आगे दिये हुए थे। "अमुक वर्ष में १३५७ औद्योगिक संघर्ष हुए जिनमें ५·१२ लाख व्यक्तियों ने भाग लिया और ४९·१९ लाख दिन जिन में कार्य होकर उत्पादन हो सकता था, एकदम बेकार गए। इसके बाद किसी वर्ष का लेखा था कि २५५६ संघर्ष हुए, १३८.४६ लाख दिन व्यर्थ गए। विगत किसी वर्ष के आँकड़े थे कि १७१·४६ लाख दिन व्यर्थ गए....।" इसके बाद के आँकड़े तो मानो देखने को ही नहीं बने थे क्योंकि उनको देखकर बड़ा भय लगता था।

उसने समाचार पत्र को एक झटके से फेंक दिया। सिर चक्कर खाने लगा था। उसने महसूस किया, जो आँकड़े इस लेख में दिये गए हैं, उनमें उसकी चीनी मिल भी गिनती बढ़ाने वाली रही है और देश को प्रगति में दुनिया से पिछड़ाने में उसका भी हाथ है। 'हड़ताल,' जिसके बिना उसको कभी चैन नहीं मिलता था, अब एक भूत की विकराल छाया सी दीखने लगी। लेखक ने हड़ताल को 'देश की पीठ में भोंका गया खंजर' कहा था। उसने लिखा था, "यह कीड़ा है जो देश के विकास की उठती फसल को चट कर रहा है। अधिकार बाधित होते हैं तो अदालतें क्या कम हैं, कि अपने हित की तत्काल पूर्ति के लिये उत्पादन रोक कर राष्ट्र की टांग खींची जाय।"

"क्या मैं देशद्रोही हूँ?" वह स्वयं से प्रश्न कर उठा।

"नहीं" उसका स्वयं को उत्तर था। वह आवेश में आ गया, "मेरे हृदय में देश के प्रति अगाध श्रद्धा रही है, देश के लिये मैं हर समय मर सकता हूँ, बिना सोचे मिट सकता हूँ... सर्वस्व दे सकता हूँ। [illegible] में जीवन में रहा हूँ किन्तु [illegible] के लिये मैंने जनता से पैसा जुटाया था" उसके मन में विचार कौंध गए।

"लेकिन इन शोषकों से मैं किस तरह निपटूं" वह दूसरे ही क्षण सोच उठा, "क्या ये मोटे पेट वाले देशद्रोही नहीं जो श्रमिक से अधिक काम लेकर कम पैसा देते और उनका शोषण कर राष्ट्र को शक्तिहीन बनाते हैं ? जब तक राष्ट्र का एक भी नागरिक भूखा है तब तक पेट भर भोजन पाकर आराम की नींद सोने वाला क्या मुझ से बड़ा देश भक्त है ?" वह आवेश में बहता और चिन्तन में डूबता गया। "लेकिन" उसके मन में फिर प्रश्न उठा, उत्पादन "रोक कर हम राष्ट्र को कहां ले जाएंगे ?" उसके मानस में एक बार फिर वे बर्बाद दिनों के आंकड़े अपनी पैशाचिक हंसी के साथ अट्टहास कर-कर गये। वह फिर गंभीर हो गया।

हवा का एक झोंका उसके कुर्ते को फड़फड़ा गया। उसे विचार आया, "जितना सामान मिल-मालिक का नष्ट हुआ, उतने का तो वह बीमा विभाग

"कुछ नहीं बिगड़ना है," उसने कहा, "हम कोई और रास्ता खोजेंगे पर हड़ताल नहीं होगी, आग नहीं लगेगी। तुम पहुँच कर संघर्ष समिति की फिर बैठक करो, मैं भी आ रहा हूँ; बहुत जल्दी।"

साथी बोझिल पैर धरता हुआ अहाते से बाहर निकल गया था। उसकी नजर दूर जाते साथी की पीठ से फिसल कर अब अपने अहाते के कनेर पर आ गई थी। कनेर उसे पहली बार हँसता हुआ लगा था। बाहर कुछ दूरी पर खड़ा लाल-लाल गुलमोहर उसे खिलखिलाता हुआ लग रहा था। उसे लग रहा था खिलखिलाहट का कोई पुल कनेर से गुलमोहर तक तन गया है और उसके रोम-रोम में एक नई स्फूर्ति जाग गई है।

20

फिर बहार

सांवर दइया

* * *

आज से पहले कभी ऐसा नहीं हुआ। ....

पूरे घर में उसके अस्तित्व की सार्थकता थी। बहुत गम्भीर न सही, लेकिन छोटी-छोटी समस्याएँ सुलझाने के लिए उसकी सलाह ली जाती थी। उसकी अपनी आवश्यकताओं की जानकारी भी हासिल की जाती थी। उसकी सुविधा-असुविधा का ध्यान रखा जाता था।

लेकिन इन दिनों उसे लगने लगा कि वह अपने घर के लोगों के लिए अजनबी बन गया है। उसका लघु, मगर सार्थक अस्तित्व भी निरर्थक हो गया है। सुबह-शाम रोटी की थाली उसके आगे सरका दी जाती है—उपेक्षा से। उसे सिर्फ कुत्ता समझा जाता है जो दो वक्त रोटी के टुकड़े खाकर बाहर पड़ा रहे। उसने भरपेट खाया है या नहीं, इस बात की फिक्र किसी को नहीं रहती है। पहले तो माँ ही पूछ लिया करती थी—अरे, अभी से क्या ना-ना कर रहा है। ले, एक फुलका और ले। और वह जबर्दस्ती उसकी थाली में गर्मागर्म फुलका रख दिया करती थी। फिर कटोरी में दाल या सब्जी डाल दी जाती थी। भरपेट खा चुकने के बाद भी वह माँ का आग्रह

टाल नही सकता था। बिना कुछ सोचे गर्मा-गर्म फुलका खा लेता। उसे डकारें आती रहती।

वह शाम को ऑफिस से लौटता तब बिना मांगे ही उसे चाय मिल जाया करती थी। जिस दिन वह देर से आता, माँ का शिकायती स्वर सुनाई देता—ऑफिस से एक बार सीधा घर आ जाया कर। यहाँ तो चिंता करते-करते प्राण सूखने लगते है। और हां ऽ! आज तो तेरा इन्तजार करते-करते चाय ही ठण्डी हो गयी।

जिस दिन वह घर पर सूचना दिये बिना ऑफिस से सीधा पिक्चर मे चला जाता और रात को साढ़े नौ बजे लौटता, उस दिन तो माँ की गालियाँ भी सुननी पड़ती—सौ बार कहा हुआ है कि घर पर कह कर जाया कर······लेकिन सुनता ही नही। अब देख, खाना 'ठण्डा-टीप' हो गया है·······। वह खाना खाकर बिस्तर मे घुसता। उस समय पत्नी शिकायत करती—यह भी कोई ढंग है। कम से कम मुझे तो कह कर जाते ·····।

फिर उसकी पत्नी उससे निपट जाती—फिर कभी इस तरह बिना बताए देर से न आने का कह कर। वह कस कर उसे पकड़ लेता। उसके होठों पर अपने होंठ रख देता। आंच पाकर संयम की मोम पिघलने लगती।

····लेकिन आजकल उसके देर से आने पर न तो माँ को चिन्ता होती है और न ही पत्नी को। मां के साथ-साथ पत्नी भी उसे उपेक्षा से देखने लगी है। भाइयों की उपेक्षा तो वह शुरु से ही सहता आ रहा है। और पिताजी के साथ वह कभी घुल-मिल ही नही सका। पता नहीं क्यों, वह शुरु से ही उनसे दूर-दूर रहता आया है।

उसे लगता है कि इन दिनों पूरे घर में बर्फ की शिलाएं जम गयी है। बर्फ की शिलाओ को वह नही तोड़ सकता।

×　　　　×　　　　×

क्यों रे, तेरी भी तनख्वाह बढ़ी है, क्या? उस दिन मां ने पूछा था।

ऊँ ऽ हूँ ऽ ऽ। उसने जूतों के फीते खोलते हुए कहा।

शिव की तनख्वाह तो बढ़ी है! तेरी क्यों नहीं बढ़ी? मां ने कहा।

बड़े भैया शिव रेल्वे में नौकर थे। इन दिनों केन्द्र सरकार ने अपने कर्मचारियों को अन्तरिम-राहत दी थी। इस कारण उनको वेतन में पच्चीस रुपये अधिक मिलने लगे थे।

मैंने कहा—राजस्थान सरकार ने अभी अन्तिम-सहायता देने की घोषणा नहीं की है।

शिव कौन-सी विलायती सरकार की नौकरी करता है? अब माँ को समझाना मुश्किल था कि केन्द्र और राज्य के बजट अलग-अलग होते हैं, राज्य सरकारें केन्द्र सरकार की समानता नहीं कर सकतीं।

उनका सीधा सम्बन्ध दिल्ली से है! मैंने कहा।

तेरा कौन-सा विलायत से है? माँ ने फिर अपना राग अलापा।

रात को शिव ने ही माँ को आखिर समझाया। तब कहीं जाकर माँ को राहत मिली वरना वह तो यही समझे बैठी थी कि वह अन्तरिम सहायता की पूरी राशि डकार रहा है।

और फिर हड़ताल शुरु हो गयी।

उसने प्रदर्शनों में खुलकर भाग लिया। सरकार को गालियाँ दीं। उसने झण्डे थामे। नारे लगाये।

सरकार के आदेश से गिरफ्तारियाँ होने लगीं। लेकिन उसने प्रदर्शनों में भाग लेना नहीं छोड़ा। वह झण्डे थामता रहा। नारे लगाता रहा। माँ उसे समझाती कि इन दंगों से दूर रहना; लेकिन वह नेता बनने के सपने देख रहा था। आखिर उसके भी 'सस्पेंशन ऑर्डर' हो गये। वह सस्पेन्ड होकर घर बैठ गया।

दो दिन तक उसने घर में किसी को भी नहीं बताया कि वह सस्पेन्ड हो गया है। तीसरे दिन भैया ने ही माँ से कहा। खबर सुनते ही पूरे घर में कोहराम मच गया। माँ ने चिल्ला-चिल्ला कर पूरा घर सिर पर उठा लिया। वह गालियाँ निकालने लगी—हरामी कुत्ते! तेरी अक्ल पर पत्थर पड़ गये थे क्या? अपनी माँ का नाम निकालने के लिए हड़ताल में शामिल हुआ था क्या? तेरे जैसे टुट-पुँजिये, जिन्हें मुँह धोने का भी शऊर नहीं है, क्या खाकर सरकार के खिलाफ झण्डे उठायेंगे? तनख्वाह बढ़ाने का यह कोई तरीका है? अब लो, घर बैठे रहना। काम भी नहीं करना पड़ेगा और हजारों मिलेंगे!

उस दिन पूरे घर में यही बात चर्चा का विषय रही। सब उसी को कोस रहे थे।

वह अपने कमरे में जा रहा था। छत पर भाभी के पास पत्नी खड़ी थी। भाभी का स्वर उसके कानों से जा टकराया—तुमने उनको समझाया

क्यों नहीं……… उस तनख्वाह में खर्च जरा तंगी से चलता, लेकिन ऐसी मुसीबत तो नहीं आती………अब क्या होगा ?

वह मन ही मन भड़का—हुँह ! अब क्या होगा ? तुम्हारे बाप का सिर ! उस समय तो सारे घर वाले जान खाये जा रहे थे कि तेरी तनख्वाह क्यों नहीं बढ़ी । तेरा सम्बन्ध कौन-सा विलायत से है ! उसका तो किसी से कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि उसकी नौकरी चली गई है । वह बुरी तरह से बेकार हो गया है ।

वह कमरे में जाकर खाट पर लेट गया । वह स्थिर दृष्टि से छत को घूरने लगा । उसे लगा कि वह छत का बोझ सहन नहीं कर सकेगा । उसके जी में आया कि वह छत पर जाये और धड़ाम् से नीचे कूद पड़े । उसकी लाश देखकर घर वाले सिर पीट-पीट कर रोने लगेंगे । हुँह ! रोते रहें, स्साले ! उसे तो मुक्ति मिल जायेगी ।

उसने सोचा और सोचकर रह गया । उसे उदासी घेरने लगी ।

× × ×

उसे लगा कि वह सबसे कट गया है । नितान्त अकेला हो गया है ।

वह अपने कमरे के दरवाजे बन्द रखता । घर के किसी सदस्य में यह साहस नहीं रहा कि उसके सामने आकर उसे कुछ कहे ।

वह खूँखार दीखने लगा । कई दिनों से दाढ़ी न बनाने के कारण और रात-रात भर जागते रहने के कारण उसकी आँखें लाल हो गयी थीं । वह किसी को घूर कर देखता तो हिंसक पशु-सा लगता ।

पत्नी उसके कमरे में आती । चाय रखकर नीचे चली जाती । चुपचाप । वह चाय पी लेता । उसका खाना भी ऊपर आता । उस दिन खाना लेकर माँ आयी । उसने कहा— किशन, तूने अपना यह क्या हाल कर रखा है ? इस तरह अपने आपको तकलीफ देने से क्या होगा ? कोई नयी नौकरी ढूँढ़ ले………किसी से मिल-जुल………आदमियों की तरह रह………।

माँ की बात का उसने कोई उत्तर नहीं दिया । बस, मन ही मन उबल उठा—हाँ-हाँ, यह आदमी नहीं जानवर है…… सिर्फ जानवर !

माँ थाल रख कर नीचे चली गयी ।

उसे जोर की भूख लगी थी । वह थाली की ओर लपका । तभी नीचे से पिताजी का स्वर उभरा—उस लाटसाहब को रोटी ऊपर देकर आयी हो……?

हाँ ऽ ऽ । (माँ का धीमा स्वर)

तुमने उसे बिगाड़ कर तीन कौड़ी का कर दिया है। अच्छी नौकरी थी, हड़ताल में शामिल होकर खो बैठा। स्साला सोचता है कि हमारा नाम भी विद्रोहियों की सूची में आये। बात करने की तमीज है नहीं और स्साले झण्डा उठाने चले थे। अब चौपट होकर कमरे में कैद हो गया है। नीचे उतरने का नाम नहीं लेता। मुँह दिखाते हुए शर्म आती है! हरामी कहीं का!

क्यों कोसते हो? जो होना था, हो चुका। अब कुछ उपाय सोचो। पिताजी भड़क उठे—हुँह! अब सोच लिया उपाय! इस जमाने में नौकरी मिलती कहाँ है? हजारों एम० ए० फर्स्ट क्लास घूमते हैं। इस बी० ए० थर्ड क्लास को कौन पूछेगा? उस वक्त नौकरी मिल गयी सो मिल गयी....... अब कहाँ रखी है नौकरी? अब तो ये घर बैठा-बैठा मक्खियाँ मारेगा.......। हाथ का कोई काम करते हुए तो लाटसाहब को शर्म आती है........इन्हें तो कुर्सी चाहिए...........।

माँ रुँआसी होकर अंदर चली गयी।

उसे लगा कि उसके कानों में शीशा उड़ेल दिया गया है, कि उसके कमरे में क्लोरोफार्म मिश्रित वायु भर दी गयी है, कि उसे बर्फ की शिलाओं के बीच लिटा दिया गया है, कि उसे मरुस्थल की गर्म रेत पर फेंक दिया गया है और वह छटपटा रहा है। निरन्तर। वह तिल-तिल कर जल रहा है।

उसने थाली छोड़ दी। गिलास उठाकर पानी पिया। आइने के सामने जा खड़ा हुआ। उसे अपनी ही आकृति बदली हुई नजर आयी। चेहरे पर मैल जम-गया था। मुर्दानगी भी छा गयी थी। कुछ-कुछ। उसने अपने चेहरे पर हाथ फेरा। लगा कि किसी कैक्टस को सहला रहा है। उसके जी में आया कि वह अट्टहास करके देखे। अट्टहास करते समय वह बढ़ी हुई दाढ़ी के कारण पागल-सा लगेगा। पागल....? हा-हा-हा....। बहुत अच्छा रहे, अगर वह पागल हो जाये।

उसने जोर से हँसने की कोशिश की। मगर हँसी की बजाय उसकी आँखों से आँसू चू पड़े। उसका जी ग्लानि से भर आया।

उसने नाखूनों की ओर देखा। नाखून भी बढ़ गये थे। नाखूनों में मैल भर आया था। वह खाट पर गिर कर सिसकने लगा।

उसने अपने कंधे पर किसी के हाथ का दबाव महसूस किया। उसने गर्दन उठायी। डबडबायी आंखें चौड़ा दीं। सामने पत्नी थी।

आप रो रहे हैं? उसने पूछा। स्वर में उदासी थी। उसने पत्नी को अपने पास खींच लिया। उसके सीने में मुंह छिपाकर रगड़ने लगा। थूक निगल कर वह बोला—च्च्"" कुछ नहीं सरला, बस यूं ही आंख भर आयी""""।

फिर पत्नी उसके अस्त-व्यस्त बालों में अंगुलियां फेरने लगी। उदास-उदास और खोयी-खोयी-सी। चुपचाप। कई देर तक।

× × ×

लोग एक बार फिर बदल गये थे। ""

पागल कहीं का। पिताजी अपने स्नेह के गुब्बारे उसके इर्द-गिर्द छोड़ रहे थे—इस तरह कहीं हिम्मत हारा करते हैं। तूने तो अपनी सूरत ही बदल डाली। जरा शीशे में तो देख, कैसा लग रहा है? अभी इसी वक्त जाकर दाढ़ी बनवाकर आ। मुझे तेरा यह ढंग जरा भी अच्छा नहीं लगता। ""

उसने सोचा—बिल्कुल ठीक। अब आपको यह सूरत और यह ढंग अच्छा कैसे लग सकता है? अब तो मैं "" हुंह। और वह हँस पड़ा। मन ही मन। इच्छा हुई—पिताजी की ओर देखे। घूरकर।

भैया भी कमरे में आ गये थे। वे कह रहे थे—तू भी खूब है रे। मुंह छिपा कर ही बैठ गया। पता है, बाहर क्या-क्या खबरें आ चुकी हैं? अब देख, सब ठीक हो गया है। नहा-धोकर कोई पिक्चर देख आ।

भगवान सब ठीक करता है। मां ने आध्यात्मिक प्रसंग छेड़ दिया मैं हनुमान जी के सवा पांच रुपयों का प्रसाद चढ़ाऊंगी। उसने मेरी प्रार्थना सुन ली। उसने सोचा कि अब मां रामायण की चौपाइयां पढ़नी शुरू कर देंगी।

पिताजी भैया को कह रहे थे—अरे, हड़ताल में यह शामिल हो और स्साली सरकार न झुके, ऐसा भी कहीं हो सकता है? इसकी हस्तरेखाएं बहुत प्रबल हैं। इसे नुकसान तो कभी हो ही नहीं सकता। और वे हँस पड़े—हो-हो-हो""""""।

हां ऽऽ, आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। भैया ने भी उनकी हँसी में साथ देते हुए कहा।

सबके आग्रह पर वह कमरे से बाहर निकला। नाई की दुकान पर जाकर दाढ़ी बनवायी। घर आकर नहाया। साफ कपड़े पहने। फिर बाहर घूमने निकल गया।

बाहर सब जगह एकही बात की चर्चा थी कि राजस्थान सरकार ने सस्पेण्ड कर्मचारियों को कार्य पर वापस ले लिया है। उनकी माँगें मंजूर करली गयी हैं। राजस्थान कर्मचारियों का अन्तरिम-राहत मिलने लगेगी।

वह घर लौटा। वह अपने कमरे में जाने लगा कि माँ उसे रोक कर तपाक् से बोली—चल, पहले भर-पेट खाना खा।

वह हँसकर खाना खाने बैठ गया। गर्मा-गर्म पराँठे और गोभी की सब्जी बहुत स्वादिष्ट लगी। साथ में चावल भी थे। उसने शक्कर मिला कर चावल खाए।

भाभी पानी का गिलास रख गयी।

उसे लगा कि पूरे घर में मधुर संगीत लहराने लगा है। फिर से। और ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही है।.....

ooo

उसने अपने कंधे पर किसी के हाथ का दबाव महसूस किया। उसने गर्दन उठायी। डबडबायी आंखें चौड़ा दीं। सामने पत्नी थी।

आप रो रहे हैं ? उसने पूछा। स्वर में उदासी थी। उसने पत्नी को अपने पास खींच लिया। उसके सीने में मुँह छिपाकर रगड़ने लगा। थूक निगल कर वह बोला—च्च् ··· कुछ नहीं सरला, बस यूँ ही आँख भर आयीं ······।

फिर पत्नी उसके अस्त-व्यस्त बालों में अंगुलियाँ फेरने लगी। उदास-उदास और खोयी-खोयी-सी। चुपचाप। कई देर तक।

× × ×

लोग एक बार फिर बदल गये थे। ····

पागल कहीं का। पिताजी अपने स्नेह के गुब्बारे उसके इर्द-गिर्द छोड़ रहे थे—इस तरह कहीं हिम्मत हारा करते हैं। तूने तो अपनी सूरत ही बदल डाली। जरा शीशे मे तो देख, कैसा लग रहा है ? अभी इसी वक्त जाकर दाढ़ी बनवाकर आ। मुझे तेरा यह ढग जरा भी अच्छा नहीं लगता। ···

उसने सोचा—बिलकुल ठीक। अब आपको यह सूरत और यह ढंग अच्छा कैसे लग सकता है ? अब तो मैं ··· हुँह। और वह हँस पड़ा। मन ही मन। इच्छा हुई—पिताजी की ओर देखे। घूरकर।

भैया भी कमरे में आ गये थे। वे कह रहे थे—तू भी खूब है रे। मुँह छिपा कर ही बैठ गया। पता है, बाहर क्या-क्या खबरें आ चुकी हैं ? अब देख, सब ठीक हो गया है। नहा-धोकर कोई पिक्चर देख आ।

भगवान सब ठीक करता है। माँ ने आध्यात्मिक प्रसंग छेड़ दिया मैं हनुमान जी के सवा पाँच रुपयों का प्रसाद चढ़ाऊँगी। उसने मेरी प्रार्थना सुन ली। उसने सोचा कि अब माँ रामायण की चौपाइयाँ पढ़नी शुरू कर देगी।

पिताजी भैया को कह रहे थे—अरे, हड़ताल में यह शामिल हो और स्साली सरकार न झुके, ऐसा भी कहीं हो सकता है ? इसकी हस्तरेखाएँ बहुत प्रबल हैं। इसे नुकसान तो कभी हो ही नहीं सकता। और वे हँस पड़े—हो-हो-हो ············।

हाँ ऽ ऽ, आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। भैया ने भी उनकी हँसी में साथ देते हुए कहा।

देखा था। उसके स्वर्गीय पति तहसील में कर्मचारी थे। रिश्वत के रूप में घर पैसों से भरता गया तो सबसे पहले यह हवेली बनी, लड़कों की शिक्षा हुई और फिर पोतों की शिक्षा हुई। कोई डॉक्टर बना, कोई वकील और कोई इंजीनियर। रिश्वत की नींव पर खड़ी योग्यता की यह हवेली अपने बचपन से ही देखता रहा है चन्दर और मन ही मन कुढ़ता रहा है।

दादी के लड़के तो बूढ़े होकर रिटायर हो गए हैं अब, किन्तु उसके दो पोते डॉक्टर हैं जो ठीक अपने दादा की भाँति खूब कमाई कर रहे हैं।

चन्दर जानता है कि डॉक्टर बनने वाले दोनों पोते हमेशा पढ़ाई में फिसड्डी रहे हैं। एक-एक कक्षा में दो-दो, तीन-तीन वर्ष लगाकर ही आगे निकल पाते थे वे। उनके पास समय और धन का अभाव नहीं था। चन्दर के पास बुद्धि का तो नहीं, किन्तु इन दोनों चीजों का ही गहरा अभाव था अतः डॉक्टरी के सपने देखते-देखते इस छोटी-सी स्कूल में अध्यापक बनना पड़ा उसे। थोड़ा-सा वेतन, छोटा सा कच्चा घर, बीमार पत्नी और गम्भीर रूप से बीमार माँ। यही गृहस्थी थी उसकी। नौकरी के शुरु के पाँच वर्ष में तो केवल कर्ज उतार पाया था वह। तब सोचा था कि अगले वर्ष माँ का इलाज अवश्य कराना है। बाल-बच्चों के साथ खर्चे बढ़ते गये और साथ ही माँ की बीमारी भी बढ़ती गई। पैंतालीस की आयु में ही वह पूर्ण रूप से टूट चुकी थी। पड़ोस की दादी से भी ज्यादा बूढ़ी लगने लगी थी वह। चन्दर ने सोचा—'कैसी विचित्र बात है? जिसे संसार में अभी और जीवित रहना चाहिए, उसे जिन्दगी नहीं मिल रही है और''''और जिसने अपना पूरा जीवन सुखपूर्वक भोग लिया उसे और सुख भोग सकने के लिए जबरन जीवन दिया जा रहा है।'

दादी को केवल दुआओं की जरूरत थी और चन्दर की माँ को दवाओं की। दादी को दवाएं और पड़ोसियों की सहानुभूति, सब मिल रहा था और माँ को?

कोई पड़ोसी औरत भी हाल-चाल पूछने नहीं आती थी उसके पास, क्योंकि दादी और माँ के बीच की इस डेढ़ मीटर की दूरी से सब परिचित थे। माँ से पड़ोस वालों को कुछ भी नहीं मिल सकता था जबकि दादी के परिवार से हर कोई रुपये-पैसे की सहायता यदाकदा लेते रहे हैं।

पिछले मास चन्दर ने माँ से कहा था—"माँ ! अब के कुछ पैसे बचे हैं,...... जरा डॉक्टर तक चलना होगा तुम्हें।" पैसे न बचने पर भी हर महीने वह यों ही कहता है, यह बात संभवतः वह भी भली प्रकार जानती है। सूखी छाती पर हाथ फेर कर खाँसते हुए उसने कहा—"डॉक्टर का इलाज मुझे रास नहीं आता बेटा ! इंजेक्शनों की बजाय तो मर जाना अच्छा समझूँगी। तुम तो ।" खाट के नीचे की परात में बलगम थूक कर निढाल होते हुए फिर कहा उसने—"...तुम तो सरकारी औषधालय से खाँसी की कुछ पुड़िया ला दिया करो। बस !...पैसे बचे हैं तो अच्छा है। छोटे बच्चे को सर्दी के कुछ कपड़े बनवा दे। ठंड बहुत पड़ने लगी है।" स्वयं मरणासन्न होते हुए भी बचत के वे पैसे, जो कभी बचते ही नहीं थे, उसके बच्चे पर खर्च करना चाहती है माँ। चन्दर का मन विषाद के घनीभूत कोहरे में डूब-सा गया। लगता है माँ उन सब सपनों से निराश हो गई है जो कभी उसकी आँखों में रचे गये थे। उन सब आकांक्षाओं की झूठी तसल्ली के सहारे चलते-चलते जैसे वह टूट गई है और अब टूटी हुई जिन्दगी को बहुत दिनों तक ढोने का साहस उसने खो दिया है। अब वह जीवित रहना नहीं चाहती और " और दादी सब कुछ भोग लेने के बाद भी मरना नहीं चाहती। लोग उसे जलाए जाने की बजाय जिलाए रखना चाहते हैं। उसके डॉक्टर बेटे उसे ऑक्सीजन देते हैं, टॉनिक देते हैं, और चन्दर अपनी माँ को सिर्फ झूठी तसल्ली ही दे पाता है। क्या करे वह ? बँधे बंधाए वेतन में तो परिवार का गुजारा ही बमुश्किल हो पाता है। इस छोटे से गाँव में ट्यूशन मिल पाने की संभावना भी नहीं। ट्यूशन का मतलब सिर्फ पास करने की गारंटी ही समझा जाता है यहाँ। फिर ..... ? पिछले साल पत्नी बीमार हुई तो कुछ रुपये उधार लेकर इलाज करवाया था चन्दर ने। सौ रुपये का वह मेडिकल बिल अब तक दफ्तर से मंजूर होकर नहीं आया था। उसके बाद के कई साथियों के झूठे-सच्चे बिल मंजूर हो गये थे पर.... । झुँझलाए हुए चन्दर ने सोचा—'कितनी धाँधली चलती है ? कितना बड़ा पेट होता है दफ्तरों का ?' औरत नौ महीनों में एक बच्चा तैयार कर लेती है किन्तु अट्ठारह महीनों में दफ्तर उसका एक बिल मंजूर नहीं कर सका था।

पत्नी की बीमारी का वह बिल अब तक स्वीकृत हो जाता तो माँ की बीमारी में काम आता। पैसों का सुभीता देखकर माँ भी इलाज के लिए इन्कार न होती।

छ:माही परीक्षा का हंगामा था स्कूल में उन दिनों। हैडमास्टर ने चन्दर को अपने दफ्तर के एकान्त में बुलवाकर रहस्य भरे स्वरों में कहा—"अमुक-अमुक रोलनम्बर के कुछ नम्बर बढ़ाने हैं, ये लीजिये चाबी, और ....।"

"पर क्यों ?" तड़प कर चन्दर ने पूछा।

"दरअसल ये लड़के फेल हो रहे हैं। नम्बर बढ़ाने से इनका भी भला हो जायेगा और हमारा भी भेंट के रूप में पत्रम् पुष्पम् कुछ तो मिलेगा ही....।"

"जी नहीं ! मैं यह सब पसन्द नहीं करता। माफ कीजिये।"

"ओह ! भले का जमाना ही नहीं है। मैं कहता हूँ, सौ रुपये तुम्हें मिल जायेंगे। और कोई होता तो पचास में ही टरका देता मैं।"

सौ रुपये ? सौ रुपये तो बहुत बड़ी रकम होती है उसके लिए। इस रकम में से वह अपनी माँ को भी किसी अच्छे से डॉक्टर को दिखा सकता है और ...संकल्प-विकल्प में डूबा हुआ कुछ क्षण मौन खड़ा सोचता रहा चन्दर। हैडमास्टर ने उसके इस मौन को उसकी पराजय समझा और चाबी बढ़ाकर उसके कंधे थपथपाता हुआ बोला—"सब-कुछ चलता है मि० चन्दर ! डोन्ट वरी ."

चन्दर की फैली हुई हथेली पर परीक्षा अलमारी की चाबी थी और हैडमास्टर का हाथ अपनी जेब में। 'सौ का नोट ! अमीर के लिए उस नोट का कोई महत्व नहीं होता, वह सिर्फ कागज का एक टुकड़ा होता है उसके लिए; पर... उसकी बहुत सी कठिनाइयाँ उससे हल हो सकती हैं। माँ का इलाज ! बच्चों के कपड़े !! किन्तु .....किन्तु देश की शिक्षा का निम्न-स्तर, युवा आक्रोश, शिक्षित बेरोजगारी, माध्यमिक और विश्वविद्यालय की ऊँची परीक्षाओं के गिरते रिजल्ट के बड़े-बड़े आंकड़े ! चन्दर की आंखों के सामने से चित्रपट की भांति यह सब एक क्षण में ही घूम गया। नहीं-नहीं..... ! उसे ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जिससे देश की शिक्षा का स्तर गिरे।

दूसरे ही क्षण अलमारी की चाबी हाथ से छूट कर फर्श पर झनझुना

उठी । पूरे वेग से चाभी फर्श पर फेंक कर सधे हुए कदमों से बाहर आ गया वह ।

हैडमास्टर के मुँह पर विस्मय, झेंप और क्रोध के मिले-जुले भाव थे । लगता था जैसे उसके उथले आत्मसम्मान एवं रिश्वती अहं को गहरी ठेस लगी हो । आखिरी पीरियड में स्कूल की डाक आई तब चन्दर को विदित हुआ कि पत्नी की बीमारी का बिल मंजूर होकर आ गया है । दफ्तर के घर में देर तो हो गई थी किन्तु अँधेरा नहीं हुआ था । सालों बाद ही सही, पास तो हो ही गया था वह बिल । इस सूचना से उसके मुख पर खुशी की एक अपूर्व लहर दौड़ गई । चन्दर को लगा कि कुछ देर पहले रिश्वत के लोभ में न फँसने का ही पुरस्कार प्राप्त हुआ है उसे । अब वह अपनी माँ का इलाज अवश्य करायेगा । कुछ पैसे बचे तो बच्चों के लिए सरदी के कपड़े भी ! और ·· और ·· उसने अपने कपड़ों की ओर देखा । शरीर पर से फिसलती हुई निराश निगाहें पैरों पर जाकर अटक गई ।

टूटी हुई चप्पल, फीतों के जोड़ की जगह आलपिनें और घिसा हुआ तल्ला !

अब सब ठीक हो जायेगा । मन ही मन जैसे वह आश्वस्त हो गया हो ।

छुट्टी के बाद मोहल्ले में घुसा तो रोने की आवाज सुनाई दी उसे । एक ऐसा रुदन जो केवल किसी मौत पर ही आयोजित किया जा सकता है । 'क्या माँ ?' चन्दर ने सोचा—'नहीं-नहीं ! उसके घर में तो रोने वाली केवल उसकी पत्नी ही है । अकेली औरत इतना तेज कोलाहल नहीं कर सकती ।'

उसे विश्वास नहीं आया कि अन्य औरतें इस डेढ़ मीटर दूरी को नापकर रुदन में उसकी पत्नी का सहयोग करने उसके घर गई होंगी ।

'तो क्या दादी ? शायद········ ।'

जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाकर गली के आखिरी नुक्कड़ पर पहुँचा तो चन्दर को मालूम हुआ कि बहुत कोशिशों के बाद भी दादी को नहीं बचाया जा सका । कैसी हैं मौत की ये नजरें जो केवल समानान्तर चलना ही जानती हैं ?

22

न्याय के कटघरे में

रघुनाथ 'चित्रेश'

* * *

कह नहीं सकता आप इसे सच मानेंगे या झूठ, पर जो कुछ भी मैं कहूँगा सच कहूँगा, सच के सिवा कुछ भी नहीं ।

माई लार्ड एण्ड जेन्टल मेन् ऑफ ज्यूरी ! जिस दिन का यह वाकिया है मुझे अच्छी तरह से याद है मैंने अपने प्रधानाध्यापक जी से साढ़े चार बजे हाथ जोड़कर कहा था मेरी दादी माँ सख्त बीमार है मुझे आज घर जाना जरूरी है और मेरा गाँव इस गाँव से पंद्रह मील दूर है अगर अभी चला जाता हूँ तो मोटर से दस मील दूरी तक पहुँच जाऊँगा और सड़क के किनारे उतर कर वहाँ से सिर्फ पाँच मील ही पैदल चलना पड़ेगा । अतः मुझे जाने की छुट्टी दे दो । पर वे बड़े ईमानदार और ड्यूटी के सच्चे प्रधानाध्यापक जी थे जिनके राज्य में गधे गुलाब जामुन खाते और घोड़े घास को तरसते थे । मुझे कहा "नहीं भाई निदेशक महोदय जी का आदेश है साढ़े पाँच बजे से पहले कोई भी अध्यापक विद्यालय नहीं छोड़ सकता ।" क्या करता दिल मसोस कर रह गया क्योंकि आज़ाद भारत का गुलाम नौकर जो ठहरा !

देखते-देखते मोटर अपने निश्चित समय के अनुसार एक धूल का बादल उड़ाती हुई शाला के बाहर कच्ची सड़क से होकर गुजर गई ।

हां ! तो मैं कह रहा था मैंने बड़ी मुश्किल से साढ़े पांच बजाए और उसके बाद मैंने अपनी साइकिल सम्भाली और रास्ते में जंगली जानवरों से आत्म-रक्षा हेतु एक छोटी सी कटार कमर पर लटका ली और चल पड़ा अपने गांव की ओर। क्योंकि अब उसके अलावा कोई साधन घर पहुँचने का नहीं था। चलते-चलते अरावली की गहन घाटियों में सूर्य डूब गया अन्धकार की भीनी चादर पगडण्डी ने ओढ़ ली।

अन्धकार बढ़ता जा रहा था। मैं भी अपनी धुन में साइकिल के पैडल घुमाये चला जा रहा था कि अचानक एक धमाका हुआ, मैं चौंक गया। यह गोली किधर से चली ? पर देखता क्या हूँ किसी पत्थर से कट लग जाने के कारण मेरी साइकिल का पहिया बर्स्ट हो गया। निराश हो पैदल ही आगे बढ़ा।

राजपूत सैनिकों में से एक हूँ और हम सब उनके आदेश की प्रतीक्षा में हैं कि कब मुगल सेना पर धावा बोला जाय।

इतने में सामने से "अल्ला-हो-अकबर" का भीषण निनाद हुआ। फिर क्या था हम सब भी राणा के एक इशारे पर जान हथेली पर लेकर "जय एकलिङ्ग" के घोर गर्जन के साथ मुगल सेना के अथाह समुद्र में कूद पड़े। तलवारों के एक-एक झटके से लाशों के अम्बार लगने लगे। हम मुट्ठी भर राजपूत इतनी बड़ी मुगल सेना के सामने क्या थे फिर भी माँ भवानी की कृपा से हमारी दुधारी तलवारें काली घटाओं के मध्य बिजली-सी कौंध-कौंध जाती थीं। मैंने देखा राणा प्रताप दुश्मनों के मध्य घिर गये हैं और एक मुगल उनके पीठ पीछे से तलवार का वार करने ही वाला है कि मैं पलक मारते उनके पास पहुँच गया और मैंने अपनी तलवार पर उसके उस वार को तो झेल लिया पर मेरा हाथ एक झन्नाटे के साथ काँप गया। मैंने देखा मेरी तलवार टूट कर हाथ से छूट कर गिर चुकी है। सोचने का समय नहीं था वह दूसरी बार वीर शिरोमणि राणा पर वार करने ही वाला था कि मैंने अपनी कमर में बँधी कटार झटके से खींच ली और पूरे जोर से उसके सीने में भोंक दी। एक हृदय विदारक चीख वातावरण में गूँज उठी मेरी आँखें खुल गईं। मैं हड़बडा कर उठा। मैंने देखा मेरे पास का वह प्राणी लहू-लुहान हुआ जिन्दगी की अन्तिम साँसें गिन रहा है। मेरी कटारी उसके सीने में घुसी हुई है। मैं हतप्रभ-सा इधर-उधर देखने लगा। बारिश थम चुकी थी बादल फट गये थे। उषा की लाली आसमान पर छा गई थी, मुझे लगा सारा आसमान मानो खून से रक्तो-रञ्जित हो गया है। मैंने इधर-उधर देखा मैं हल्दीघाटी के रक्त-तलैया की एक छतरी में खड़ा हूँ जहाँ किसी जमाने में राणा प्रताप और मुगल सेना में भीषण युद्ध हुआ था और उस वक्त इतना खून बहा था कि आज भी यह स्थान "रक्त तलाई" के नाम से जाना जाता है। वहीं पास से मेरे गाँव की ओर जाने का रास्ता था। मैं किंकर्तव्यविमूढ़ सा हो गया। मैं कभी पूरब में छाई लाली को देखता कभी छतरी के फर्श पर बिखरे लाल-लाल खून को। इससे पहले कि मैं कहीं भाग निकलूँ पास के गाँव वालों ने मुझे घेर लिया शायद उसकी चीख गाँव वालों ने सुन ली थी। "मार डाला बेचारे को पकड़ लो! पकड़ लो!!" की आवाजें कान के पर्दे फाड़ने लगी। मैं निर्निमेष दृष्टि से उनकी ओर देखता रह गया।

मैंने देखा मेरे हाथों में पुलिस द्वारा हथकड़ियाँ डाली जा चुकी हैं मेरी कमर में अब भी उस कटारी का खाली पटा लटक रहा था जिसे मैंने अपनी जंगली जानवरों से आत्म-रक्षा हेतु लटकाई थी। मैं बिना किसी विरोध के उनके साथ हो लिया और आज आपके सामने इस न्यायालय में न्याय हेतु उपस्थित हूँ। आप न्यायाधीश हैं आपका न्याय मैं ईश्वर न्याय मानूँगा आप जो चाहे सजा मुझे दें मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा। क्योंकि यह सच है कि मैंने ही उसकी हत्या की है। मैं खूनी अवश्य हूँ पर मैं नहीं जानता, मैंने पाप किया या पुण्य। न जाने पूर्व-जन्मों में वह कौन था, मैं कौन था कह नहीं सकता मुझे जो कहना था कह चुका। फैसला आपके हाथ है।

"जय एक लिङ्ग ! ।"

ooo

23

मेरा कमरा ! मेरा साथी

भागीरथ भार्गव

* * *

सब चले गये हैं और मैं अकेली हूं ।

मेरे अपने सब चले गये हैं, मेरे लिए छोड़ गये हैं -- एक अकेलापन । एक ऐसा अकेलापन जो मेरे चारों ओर स्थाई रूप में घिर आया है—मेरे अपने परिवेश का एक अंग बन गया है । सच, मैं अकेली रह गई हूं—सब चले गये हैं ।

अकेली हूं और शून्यता व अकेलेपन से भरा यह मेरा चिर-परिचित वातावरण है । और कुछ ऐसी ही है सुबह से शाम तक की खोई हुई, भटकती हुई पत्थरों पर सिर पटकती मेरी दिनचर्या । इस दिनचर्या का एक बड़ा भाग बीतता है, इस कमरे में । यह कमरा मेरा आश्रयदाता है । सच, मुझे इससे प्यार है । मेरा साथी—मेरा कमरा मेरा हमदम, मेरा दोस्त ।

कमरे में एक ओर बुक शेल्फ में मेरी पुस्तकें हैं जो मैंने एम० ए० के लिए खरीदी थीं। इन पुस्तकों के साथ ही हैं मेरे वे नोट्स जो मैंने परीक्षा के लिए परिश्रम से बनाये थे या फिर मेरे लिए बिन्नू ने तैयार किये थे। कौन बिन्नू ? एम० ए० का मेरा सहपाठी। उसका पूरा नाम था विनोद मिश्रा। पर, मैं तो बिन्नू ही कहती हूँ। कहती क्या हूँ, कभी कहा करती थी। भला आदमी, कितना परिश्रमी था ! साथ-साथ हम पढ़ा करते थे, इसी कमरे में। रात अँधेरी और गहरी हो जाती, इसके साथ ही घड़ी टिक-टिक करती ही तेज़ी से आगे बढ़ जाती। इस बीच मेरी आँखें नींद से बोझिल हो झपकने लगतीं—मैं बहुधा वहीं अपनी कुर्सी पर ही नींद लेने लगती। पर यह बिन्नू टेबिल लैम्प के प्रकाश में खरगोश-सा सहमा हुआ नीचे गर्दन झुकाए, दोनों कानों को ऊपर उठाए, पढ़ता रहता था या फिर कुछ लिखता रहता और जब लिखना बन्द कर देता तो मुझे आवाज लगाता—बहुत हल्की व धीमी आवाज, एक सहमी हुई आवाज। सुन आँखें खोल देती और वह चलते हुए कहता—"मनो, तुम भी ये नोटस उतार लेना।" और वह बिना किसी औपचारिकता के वापस चला जाता।

फिर वह आता, धीरे से पुकारता—"मनो" जैसे मनो को आवाज देना अपने आपमें एक चोरी हो, एक अपराध हो। कई बार चाय का प्याला पकड़ते हुए या पुस्तक लेते समय बिन्नू से मेरी अंगुलियां छू जातीं। वह छुई-मुई सा सिकुड़ जाता और फिर बहुत देर तक नीची निगाहें किये अपने पैर के अंगूठे से नीचे कार्पेट पर कुछ कुरेदता रहता। मेज के नीचे मेरी पिंडलियों से अपने पैर छू जाने तब भी उसे कुछ ऐसा ही होने लगता। बिन्नू सचमुच कायर ही था। दूर-दूर से देखता रहता और पास आने पर उसे जाने ज्वर हो आता।

कमरे में कॉर्निस पर मेरा बस्ट साइज का एक फोटो, फ्रेम में जड़ा है। फोटो के पीछे बैक-ग्राउन्ड में म्यूजियम है, जयपुर का अल्बर्ट हॉल। किसने खींचा था यह फोटो ? विपिन अग्रवाल ने। कौन था मेरा वह विपिन अग्रवाल ? सचमुच यह तो बतलाना मेरे लिए कठिन ही होगा। बस था वह मेरा, इतना मैं जानती हूँ। वह मेरा था, केवल मेरा। वह मेरा होने वाला सब-कुछ था। क्या वह मेरा सब-कुछ हो सका ?

मैं तो विगत की बात कर रही थी। अब तो वर्तमान है। अब तो सब चले गये हैं—मुझे अकेली छोड़कर। वह विपिन भी कहीं चला गया है।

भीड़ में कहीं खो गया है। अब तो केवल कुछ पदचिन्ह रह गये हैं। कुछ धूल उड़ती हुई रह गई है, केवल संकेत देती हुई कि अभी इधर से कुछ गुज़र कर गये हैं, तेज़ी के साथ। मेरे कितने ही अपने इस भीड़ में खो गये हैं। अब कहाँ जाकर ढूँढ़ूँ उन्हें !

एक समय था— जब सचमुच मे विपिन मेरा था, केवल मेरा। मैं थी और वह था, वह था और मै थी। हम केवल दो थे, पर अपने एक नये माहौल मे जहाँ वीरानी नही थी, और हम नित नयी-नयी हरियाली घाटियों में घूमते थे। मुझे उसकी खिलखिलाती आँखों में अपना प्रतिबिम्ब अच्छा-सा स्थान बनाए हुए दिखलाई देता था और विपिन मेरे मुखड़े को दोनों हाथों से साधे चेहरे के पास ले आता, मेरी आँखों में एकटक झाँकता रहता—झाँकता रहता, फिर चौंकता-सा कहता—मैं·······मैं ···यहाँ ···तुम्हारी आँखों में रहता हूँ। फिर न जाने क्या हुआ कि उसकी आँखों से मेरा प्रतिबिम्ब हटने लगा, धीरे-धीरे हटने लगा। कुछ समय तक धुँधला दिखाई दिया और फिर वह सदा-सदा के लिए लुप्त हो गया। मैंने समझा—यह मेरा भ्रम ही था केवल। किन्तु यह तो एक कटु सत्य था। इसके बाद किसी ने मेरी आँखो मे नही झाँका और न ही झाँककर यह बतलाया कि इन आँखो में, इन पुतलियों में एक कोई निवास करता है।

विपिन का नाम सुनकर ही मुझे अजीब-सी अनुभूति होने लगती है। मुझे अपने पोर-पोर में बहुत से दर्पण दिखलाई देने लगते हैं और उन दर्पणों में विपिन की मुद्रा दिखलाई देती है। और मैं सुन पाती हूँ—अकेले कंठ की पुकार ? कौन है यह अकेला कंठ स्वर ? क्या विपिन का यह स्वर ? ना–ना, उसका नहीं हो सकता। उसका स्वर मेरे पास इतनी दूरी पर नहीं आ सकता, फिर किसका है यह कंठ स्वर ? या फिर मेरा भ्रम ही है केवल ?

पुन: मेरी दृष्टि कमरे के किसी एक बिन्दु पर स्थिर होती है। कमरे के एक कोने में मेरी अटैची है—जिसमें बहुत-कुछ है। इसमें कुछ साधारण है और कुछ विशेष। किसे विशेष कहूँ और किसे साधारण, यह मैं स्वयं ही समझ नहीं पा रही हूँ। उदाहरणार्थ—अटैची के निचले हिस्से में, एक कोने में कुछ पत्र रखे हैं, सुन्दर-सुन्दर शब्दों, मीठे-मीठे शब्दों में रंगीन सुगंधित पृष्ठों पर लिखे गये ये पत्र साधारण हैं या विशेष या फिर महत्त्वपूर्ण—मैं स्वयं ही निर्णय नहीं कर पा रही हूँ। मुझे लिखे गये ये कुछ प्रेमपत्र हैं।

किसने लिखे थे—विपिन ने। मेरे विपिन ने—जिसे मैंने अपना केवल अपना ही समझा था, उसने मुझे अपना माना था। आज भी जब पत्रों के सम्बोधनों को स्मरण करती हूँ तो एक अवर्णनीय सरसराहट से मेरी यह दुबली, पतली, साँवली देह कई रंग बदलने लगती है। सच, कभी-कभी तो लाज में ही गड़ जाने को मन करता है। जब पढ़ती हूँ—"मेरे सपनों की रानी" तो बस वैसा ही बनने को जी चाहता है। बार-बार मन करता है—सज सँवर कर दुल्हन बन बैठ जाऊं और डाल लूँ अपने मुखड़े पर अवगुंठन, एक झीना सा अवगुंठन और बैठी रहूँ एक प्रतीक्षा में। इसी प्रतीक्षा में—"सपनों की रानी" कहने वाला वह मेरा मीत आ जाये तो मुझे यूँ प्रतीक्षारत पाए। वह आजाए तब मैं अपने झीने अवगुंठन से उसे देखूँ और फिर शीघ्र ही अपनी आँखें धीरे-धीरे मींच लूँ, एक आने वाले सुख व आनन्द की कल्पना में। और बस मींचे रहूँ तब तक कि वह मीत अवगुंठन उठा न दे। वह अवगुंठन उठादे—उसके जलते अधर मेरी ओर बढ़ें, उसकी उन्मादिनी बाहें मेरी ओर बढ़ें और मैं सचमुच उस क्षण समर्पित हो जाऊँ। पर···· पर·· वे क्षण तो अब कभी नहीं आने वाले हैं, मैं किसी की प्रतीक्षा नहीं करने वाली हूँ। कोई आने वाला नहीं है।

और भी बहुत-कुछ है--मेरी अटैची में: कुछ खिलौने हैं। कैसे खिलौने? एक शिक्षित युवा लड़की की अटैची में खिलौने। है ना एक विरोधाभास? पर अब उन सबको क्या संज्ञा दूँ? ये खिलौने कुछ प्रेजेण्ट हैं। ये मेरे लिए खिलौनों के समान ही तो हैं। अब क्या महत्त्व रह गया है इनका? तब क्या एक दिन इन्हें बांट दूँ किन्हीं जरूरतमन्दों को ताकि ये फिर से किसी सतो को किसी विपिन द्वारा दिये जा सकें? पर क्या सतो इन्हें अपने पास नहीं रख सकती है? उसे ऐसा इनसे क्या अलगाव हो गया है? ये तो स्मृति चिन्ह हैं—स्मृति महल!

अजीब हैं मेरे ये स्मृति महल जिनकी अटारियों पर मैं चढ़ नहीं सकती, जिनके झरोखों में बैठकर बाहर के माहौल से सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकती। ये स्मृति महल तो महज कागज के महल हैं, तिनकों के महल। वास्तव में ये महल [illegible] धूल धूसरित हो चुके हैं। पर न जाने, फिर भी ये क्यों खड़े हैं अभी तक? सम्भवतया ये स्मृति महल मेरे [illegible]

अच्छे बिम्ब हैं। मेरा व्यक्तित्व भी तो खोखला है और यूँ ही भटकता जा रहा है।

यह प्रेम-पत्रों का एलबम, ये प्रेजेन्ट्स से भरा जादू के खिलौनों का पिटारा, जिन्हें मैं खोखले स्मृति महल संज्ञा दे रही हूँ—क्या इन्हें नष्ट कर दूँ?

जब सब चले गये हैं, मेरे अपने चले गये हैं, तब इन्हें ही सँजो कर रख लूँ। भले ही इनका रखना ताबूत मे बन्द किसी लाश को रखने जैसा ही हो। मिस्र के पिरामिडो मे भी तो ऐसे ही केस को ताबूत में ही रहने देते हैं।

मेरे कमरे मे खिड़कियाँ हैं—जिन पर हल्के रंग के रंगीन परदे लगे हैं, जो निरन्तर फड़फड़ाते रहते है—सर''' सर धीमी धीमी आवाज के साथ, सड़क पर से गुजरने वाली हर आवाज, हर गन्ध इन्हीं खिड़कियों से मेरे पास आती है। इन ध्वनियों और विभिन्न गन्धों से मैं बाहर की दुनिया का आभास पाती हूँ। आभास पाकर जैसे अपने अकेलेपन को कुछ हल्का कर लेती हूँ। किन्तु, इस अकेलेपन का यह बोझा वास्तव में कम हो जाता है क्या?

इन खिड़कियों से आने वाली आवाजें आज तो बोझा ही बढ़ाती हैं, किन्तु एक दिन अवश्य ही अकेलापन दूर हो जाता था, जब किसी साइकिल की घन्टी बजती तो मैं चौंक उठती थी। मैं सड़क की ओर देखने लगती थी, तब मुस्कुराता विपिन दिखलाई देता था। शैतान, हवा मे फ्लाइंग 'किस' छोड़ता हुआ चला आता था। तब मुझे अनुभव होने लगता था जैसे वह हवा में ही उड़ता हुआ मेरे पास आ गया है। सच, उस फ्लाइंग किस की मीठी जलन मुझे अपनी हथेली पर अनुभव होने लगती थी और मेरे अधर उसे पकड़ने के लिए फड़फड़ा उठते थे। पर वे दिन और ही थे।

"बीबीजी, चाय ले आऊँ?" यह नौकरानी लक्ष्मी का स्वर है, जो करीब तीन बजे के आस-पास रोज ही सुनाई देता है। मैं उसे अपनी स्वीकृति दे देती हूँ।

चाय की ट्रे कमरे में रख कर लक्ष्मी लौट गई है। कमरे का अकेलापन चाय का प्याला तैयार करते हुए मुझे फिर अनुभव होने लगता है। पास में रखी दूसरी कुर्सी खाली है। कभी उस कुर्सी पर विनू बैठा करता था,

24

स्वाधीनता का मूल्य

विश्वनाथ पाण्डेय 'प्रणव'

* * *

नीमा विजय के पश्चात् यूनानी आक्रमणकारी सिकन्दर महान् ने अस्सकेनों की राजधानी मस्सक को जिस समय घेरा, यही समझा था कि अनेकों जीते हुए राज्यों की भाँति इस पर भी आसानी से विजय पा लेगा। लेकिन, उसका यह विचार स्वप्न की भाँति टूट कर रह गया। भारत में प्रवेश के पश्चात् पहली बार उसे भारतीय वीरों के शौर्य्य का सामना करना पड़ा। उसे क्या पता था कि भारतीय वीर इतने निर्भीक एवं पराक्रमी होते हैं!

गौरी नदी के पूर्व में स्थित मस्सक का विशाल दुर्ग उस समय अभेद्य एवं अपराजेय समझा जाता था। इतना ही नहीं, यहां की रण-बाँकुरी सेना भी बेमिशाल थी; युद्ध-भूमि में सिर पर कफ़न बांध कर उतरती थी और दुश्मनों की जान के लाले पड़ जाते थे। यही कारण था कि महत्वाकांक्षी सम्राट सिकन्दर जैसे विश्व-विख्यात योद्धा को भी लोहे के चने चबाने पड़े।

सिकन्दर की सेना ने मस्सक नगर को चारों तरफ से घेर रखा था। उसने आक्रमण करने से पूर्व नगर के राजा को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए सन्देश भेजा। किन्तु, स्वाभिमानी राजा ने उसकी इस शर्त को ठुकरा दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि उसे अपनी स्वाधीनता के लिए बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। सिकन्दर ने अपनी सेना को नगर में घुस जाने का आदेश दिया। सेना नगर में घुस पड़ी। अस्सकेनी सेना भी तैयार बैठी थी। उसने अपने राजा के एक इशारे पर ही यूनानी सेना पर आक्रमण कर दिया। दोनों सेनाओं में भीषण संग्राम मच गया। बहादुर अस्सकेनी जनता ने अपने सिपाहियों का साथ दिया और कुछ ही घण्टों में सिकन्दर की विशाल सेना के छक्के छुड़ा दिये। सिकन्दर की सेना को पीछे हटना पड़ा।

अपनी इस पराजितावस्था को देखकर सिकन्दर का खून उबल आया। उसने अपने चुने हुए अश्वारोहियों को आगे किया और स्वयं सेना का नेतृत्व करते हुए नगर पर पुनः आक्रमण किया। अस्सकेनी सेना इससे रंचमात्र भी विचलित नहीं हुई। सिकन्दर की तरह इस सेना का नेतृत्व स्वयं यहाँ का राजा कर रहा था। दोनों सेनाओं में एक बार पुनः टक्कर हुई। फिर से भयानक युद्ध प्रारम्भ हो गया। सिर पर कफन बाँध कर लड़ने वाली अस्सकेनी सेना ने यूनानियों पर गजब ढानी शुरू कर दी। लगता था, इस बार भी सिकन्दर को पीछे हटना पड़ेगा। लेकिन, इसी बीच अस्सकेनी राजा को शत्रु का बरछा लगा और वह रणभूमि में सदा के लिए सो गया।

बिना सवार के घोड़े व बिना महावत के हाथी की जो स्थिति होती है, वही युद्ध-भूमि में बिना सेनानायक के सेना की होती है। अपने राजा की मृत्यु से अस्सकेनी सेना विचलित हो गई। सिकन्दर ने सोचा, अब वह हथियार डाल देगी। लेकिन, उसे क्या पता कि यह उसका कोरा भ्रम था। उधर सेना ने दूसरी रणनीति अपनायी। अचानक सब दुर्ग के द्वार पर सिमटने लगे। यकायक दुर्ग का द्वार खुला और कुछ सिपाहियों को छोड़कर शेष दुर्ग के अन्दर बन्द हो गये। बाहर बचे सैनिक एक-एक करके उससे मुकाबला लेते-लेते वीरगति प्राप्त कर लिये।

सिकन्दर ने दुर्ग का द्वार तोड़ने की बहुत कोशिश की, किन्तु असफल रहा। जभी भी जब राजा के वीरगति प्राप्त होने का समाचार मिला, तो वह भीतर से टूट कर चूर-चूर हो गयी। फिर भी, उस विषम परिस्थिति में

निर्दोष सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया।

रानी को जब इस विश्वासघात का समाचार मिला, तो वह क्रोध से धधक उठी। उसने बचे हुए सैनिकों को ललकारा। देखते ही देखते किले के अन्दर कुहराम मच गया। दोनों तरफ से सिर कट-कट कर गिरने लगे। अस्सकेनी सैनिकों को अब अपने प्राणों का मोह रंचमात्र भी नहीं रहा था। उन्हें मरना था, इसलिए उन्होंने अधिक से अधिक मार कर मर जाना ही अच्छा समझा और अपने प्राणों पर खेल गये। जो भी उनके सामने आता, गाजर-मूली की भांति जमीन पर छटपटाने लगता था। यूनानी सैनिक घबरा गये। सिकन्दर ने देखा, उसके सैनिक हताश हो रहे हैं। इसलिए, वह बढ़कर सामने आ गया और अपने सैनिकों को ललकारा। उसके सैनिकों में फिर से बल आ गया। वे फिर पूरे जोश-खरोश के साथ लड़ने लगे।

सिकन्दर की विशाल सेना के आगे अंगुलियों पर गिनी जा सकने वाली अस्सकेनी सेना भला कब तक टिक सकती थी। धीरे-धीरे सभी समाप्त हो चले। सिकन्दर मन ही मन मुस्कराया और रनिवासों की तरफ बढ़ चला। लेकिन सबसे बड़ा आश्चर्य उसे तब हुआ जब उसने अपने सामने दुर्ग की औरतों को सैनिक-वेश में देखा। उनका नेतृत्व स्वयं रानी कर रही थी। सिकन्दर ने पहली बार देखा और सीखा कि भारतीय औरतें केवल पर्दे के अन्दर रहने वाली अबला ही नहीं होती, वे समय पड़ने पर रणचण्डी का रूप भी धारण कर सकती हैं। अबलाओं की लड़ाई बड़ी भयानक। विश्वासघाती सिकन्दर तब भी नहीं हिचकिचाया और उसने फिर युद्ध का आदेश दे दिया।

युद्ध का परिणाम निश्चित था। जो होना था वही हुआ। अन्त में आखिरी दम तक लड़ते-लड़ते सभी औरतें काम आ गईं।

तेईस सौ वर्ष बाद, आज भी वह युद्ध भुलाये नहीं भूलता। विश्व-विजय का आकांक्षी सिकन्दर और उसकी विशाल सेना मुट्ठी भर अस्सकेनी सेना और वहाँ की वीरांगनाओं के सामने कितनी ही बार टिक न सकीं। दुनिया के एक महान सम्राट को लोहे के चने चबाने पड़े—एक मामूली राज्य की वीरांगनाओं के सामने। दुनिया में ऐसी वीरतापूर्ण मिसाल ढूँढे नहीं मिलती। स्वाधीनता के लिए सब-कुछ निछावर कर देना, दुश्मन के सामने सिर न झुकाना, ऐसी परम्परा भारतीय इतिहास में ही देखने को मिल सकती है।

25

प्रेत

गोपीलाल दवे

* * *

मैं भूत-प्रेतों में विश्वास नहीं करता क्योंकि इससे शिक्षित होने की सीमा का उल्लंघन होता है। आजाद देश के शिक्षक को ऐसी बातों का विरोध ही करना चाहिए, जिससे विज्ञानवादी होने का भी श्रेय अनायास मिल जाता है। यह विचित्र ही है कि जिस बात का विश्वास नहीं उसमें ही उत्कंठा उत्पन्न हो जाय और सचमुच प्रेत का साक्षात्कार हो जाय।

बात पुरानी नहीं—बिल्कुल नई भी नहीं। पुराने आचार्यों व शिक्षकों का गौरव पढ़कर गौरव की अनुभूति होती है तथा ईर्ष्या भी। यों हमारा देश आदर्शों की संख्या में अग्रणी है, यह बात अन्य है कि आदर्शों का गुणात्मक रूप क्या है? बीसवीं सदी का भारत का शिक्षक एक अभूतपूर्व जीव है। यह केवल रिक्त स्थानों में बिना सोचे-समझे की गई पूर्ति है। आजकल रिक्त स्थान किसी के मरने पर नहीं होते, उत्पन्न किये जाते हैं। शिक्षक की वर्तमान दशा के मूल का पता मैंने और शिक्षकों ने तथा शिक्षा-प्रेमियों ने लगाने का प्रयत्न किया

पर किसी ने भी सच बोलना उचित नहीं समझा। अपनी स्थिति की निम्न अनुभूति उतनी दुःखदायक नहीं जितनी कि उसकी अभिव्यक्ति अपमानजनक है।

एक बार छुट्टियों मे भ्रमण-रत था। निरुद्देश्यता की औषध भ्रमण ही है। एक गाँव मे पहुँचा। मेरा एक पुराना मित्र वहीं रहता था। बातों ही बातों में भूत-प्रेत की चर्चा निकली और बढ़ गई। मित्र ने कहा कि इस गाँव में एक सिद्ध प्रेत-साधक रहता है। वह मृत व्यक्ति के प्रेत से साक्षात्कार करवा सकता है। शीघ्र ही निश्चय किया कि ऐसे व्यक्ति से मिलना ही चाहिये—एक पन्थ दो काज। शकाओं का समाधान भी होगा तथा रहस्य का परदा भी उठेगा।

गांव के बाहर वह रहता था। शाम के समय वहाँ पहुँचे। साधक अकेला ही था। उसकी वेश-भूषा असामान्य लगी। आँखों में लालिमा थी। उसके कक्ष में कई ऐसी वस्तुएँ थीं जो सामान्य घरों में उपलब्ध नहीं होतीं।

प्रणामादि की औपचारिकता होने के बाद हम एक आसन पर बैठ गये। मेरे मित्र ने मेरा परिचय दिया और आगमन का हेतु भी बताया। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि मुझे तथाकथित विद्या में अविश्वास है तो साधक ने प्रमाण प्रस्तुत करने की तत्परता दिखाई।

द्वार बन्द कर दिया गया। कक्ष में हल्का अँधेरा था। साधक ने एक गोल वृत्त खींचा—कुछ चूर्ण फेंके—आँखें बन्द कर कुछ पढ़ा। मुझे कहा "बोलो किससे बात करना चाहते हो ?" मैंने सोचा, "क्यों न किसी मृत शिक्षक से ही साक्षात्कार करूँ ?" कुछ महीनों पहले अखबार में एक अध्यापक की मृत्यु का समाचार था। उसकी कहानी छपी थी। मुझे उसका नाम व स्थान तथा अन्य बातें याद थीं। मैंने तुरन्त कहा, "अमुक नाम वाले, अमुक स्थान निवासी शिक्षक से मुझे मिलाइये।" शीघ्र ही साधक ने कुछ मुद्रायें कीं, आंखें बन्द कर ध्यान किया। मेरे हृदय की गति बढ़ गई थी पर मैं सचेत था। घेरे में धीरे-धीरे एक कंकाल प्रकट हुआ। भयानक लगता था। विश्वास नहीं हुआ कि किसी जीवित प्राणी का ऐसा भी रूप बाद में होगा। हड्डियों का ढाँचा—न मांस न त्वचा। आँखें चमक रही थी। संकेत मिलने पर मेरा उस प्रेत से निम्न वार्तालाप हुआ :—

मैं—"क्या आपकी स्वाभाविक मृत्यु हुई थी ?"

प्रेत—"नहीं, मुझे मारा गया। गांधी की तरह मैंने भी दीर्घ जीवन की

आशा की थी।·······!!"

मैं—"क्या आपका किसी से वैर था, मनमुटाव था या आप स्वभाव से ही असंतोषी थे।"

प्रेत—"जीवन के प्रति मेरा दृष्टिकोण संतोष का रहा। मेरा विरोध शासन विभाग की उन नीतियों से था जहाँ शिक्षा जैसा विभाग अशिक्षकों के हाथ खिलौना बना रहा। जहाँ शिक्षा को हानि-लाभ के दृष्टिकोण से देखा गया, जहाँ घिनौनी राजनीति के जाल में शिक्षकों का व्यक्तित्व उलझ गया—जहाँ··········"

मैं—"ये बातें तो आज भी ज्यों की त्यों कायम हैं। क्या आप यह बताएँगे कि आपको ऐसी कौन-सी ठेस लगी जो घातक सिद्ध हुई?"

प्रेत—"एक ही हो तो गिना भी सकता हूँ। मैंने मेरे समकालीन शिक्षकों में बहुसंख्यक ऐसे पाये जो स्थानान्तर के चक्र में समाप्त हो गये। योग्य शिक्षकों को तथाकथित ठेकेदारों का कोपभाजन होते हुए देखा। अध्यापन में अकुशल तथा अधिकारों के तलवे चाटने वालों की चाँदी बनते देखी। उपर्युक्त सारे विरोधी तथ्यों ने मेरे व्यक्तित्व को क्षीण कर दिया।"

इसी बीच साधक ने मुझे संकेत किया कि प्रेत के जाने का समय हो गया है। वार्तालाप का उपसंहार करते हुए मैंने प्रेत से अन्तिम प्रश्न पूछा।

मैं—"क्या आपने अपने जीवन में इस दुर्दशा के निवारण का कोई उपाय नहीं सोचा था?"

प्रेत—"सोचा था, अच्छे ढंग से सोचा था। मैं चाहता था कि शिक्षकों को अन्य विभागों के कर्मचारियों से पृथक आदर्श धरातल पर देखा जाए। समाज में उन्हें सम्मानित रखने की दृष्टि से उनका आर्थिक जीवन समृद्ध किया जाए। केवल शिक्षा में रुचि रखने वाले ज्ञान-सम्पन्न लोगों को ही इस क्षेत्र में प्रवेश दिया जाए। पाठ्यक्रम एवं अन्य कार्यक्रमों को ऊपर से न थोपा जाए। शिक्षकों को इतर सरकारी कार्य के लिए न भेजा जाए—इ··········"

धीरे-धीरे अंधकार अदृश्य होता गया और अनिरुद्ध मैं जैसे किसी झटके के साथ पुनः इसी जगत् की वास्तविकताओं के बीच आ गया। कक्ष में प्रकाश भी

ली बढ़ गई थी—जिसमें हम-सबने एक-दूसरों के चेहरों पर भावों की क्रीड़ा देखी।

साधक को प्रणाम करके मैं अपने मित्र के साथ बाहर आया। अंधेरी रात थी—चारों तरफ अंधेरा। मित्र ने चुप्पी भंग करते हुए कहा—"देखा, प्रेत होते हैं।" मैंने उत्तर दिया—"हां, होते हैं।"

मार्ग में चलते हुए मुझे ऐसा लगा जैसे उस प्रेत जैसे अनेकों प्रेत मेरी आंखों के सामने तैर रहे हैं।······ सभी कुछ अस्फुट शब्दों में कहे जा रहे थे। मैं तेजी से कदम बढ़ाने लगा। मित्र के घर पहुंचने पर मुझे ऐसा लगा कि मैं भी एक जीवित प्रेत हूं।

राधा ने एक बार उस हीरे-पन्ने से जड़े हुए शमादान की ओर देखा और दूसरे ही क्षण उसकी आँखें अपने भाई के प्रति अभिमान से चमक उठीं। उस दिन फिर उनके विलम्ब से आने की कोई आलोचना न हुई। सब लोग प्रसन्नचित्त हो, खा-पीकर सो गये।

तीन-चार दिन बाद अचानक रात को द्वार खटखटाने की आवाज सुन, डॉ० चटर्जी बाहर गये तो देखा कि एक बलिष्ट किन्तु दीन-गरीब व्यक्ति आसरे की याचना कर रहा है। उनकी उदार प्रवृत्ति ने केवल उसी दिन नहीं वरन् और भी कई दिन उसे जाने न दिया। वह भी बड़े ही अपनेपन से रहता, खूब अच्छी अच्छी बातें करता और काम में भी हाथ बँटाता। घर के सभी लोगों से वह खूब हिलमिल गया था। लेकिन एक दिन अचानक कोई खटका हुआ और देखा तो रहमान (वह व्यक्ति) भी गायब था और वह शमादान भी।

राधा बरस पड़ी—'देख सुधीर! मैं पहले ही कहती थी, बिना जाने-पहचाने किसी पर इतना विश्वास मत करो, लेकिन तुम मानो तब न! दुनियाँ में सब तुम्हारे जैसे ही थोड़े हैं? लो! अब यह आठ-दस हजार की चोट और पड़ी।'

रेखा तो एकसाथ ही मचल पड़ी—'मेरा शमादान, पिताजी! उसे ढूँढ़ दो पिताजी, मैं तो वही लूँगी।'

उन्होंने उसे समझाने का भरसक प्रयास किया, पुलिस में रिपोर्ट लिखाने का भी विश्वास दिलाया, लेकिन उनका दिल जानता था कि वे कुछ न करेंगे। उनका दिल कहता—बेचारे को जरूर ही कोई आवश्यकता आ पड़ी होगी, नहीं तो ... ...अच्छा आदमी था बेचारा!

और उन्होंने कोई प्रयास नहीं किया। रेखा को बहला देते—रिपोर्ट लिखा दी है, पुलिस जाँच कर रही है, आदि, आदि। लेकिन उनका दिल एक कदम भी आगे न बढ़ा था। वे रहमान को किसी भी तरह दोषी नहीं पाते थे।

एक दिन सायंकाल वे बाहर लॉन में बैठे थे कि उन्होंने एक थानेदार, कुछ सिपाही और बेड़ियों में जकड़े रहमान को पोर्च में घुसते देखा। आगे बढ़कर बड़े अदब से सैल्यूट देते हुए थानेदार ने कहा—'डॉक्टर साहब! एक दिन यह आदमी उस शमादान को लिये हुए भागता चला जा रहा था।

मैंने तुरन्त पहचान लिया कि यह वही शमादान है जो उस दिन रायसाहब ने आपको भेंट किया था। लीजिये, मैं इसे पकड़कर आपके पास ले आया हूँ।'

'लेकिन थानेदार साहब! आपको कुछ भ्रम हुआ है। रहमान तो मेरे अपने लोगों में से है, मैंने ही उस दिन इसे यह दे दिया था। गरीब भले ही हो, चोरी तो यह कर ही नहीं सकता। इसकी वेशभूषा से कोई इसे चोर न समझले, इसीलिये भाग निकला होगा आपको देखकर।'

और थानेदार देखता ही रह गया, रहमान की आँखें नीची हो गई थीं। उसकी बेड़ियाँ खोल दी गईं। थानेदार समझते हुए भी कुछ न कह सका, एक बार फिर सैल्यूट करके धीरे-धीरे चल दिया।

अब रहमान और डॉक्टर सुधीर अकेले रह गये। दया के अवतार अपने संरक्षणकर्त्ता की महानता देखकर रहमान रो पड़ा। सिसकते हुए उसने कहा—'क्षमा करना बाबू! मैंने आपको पहचाना नहीं। मेरे ये हाथ जिन्होंने अपने पिता के घर सेंध लगाई है, अपने ही आश्रयदाता के यहाँ चोरी की है, उसी समय टूट क्यों न गये? ओह! कितना नीच हूँ मैं! मुझे माफ करना बाबू, मैं……' और वह नीचे गिर पड़ा।

उसे उठाकर हृदय से लगाते हुए डॉक्टर ने कहा—'नहीं रहमान, यह शमादान तुम जरूर ले जाओ। यह केवल मेरी बैठक को ही नहीं, दुनिया को प्रकाश देने के लिये है। 'जाओ, इससे अपनी आवश्यकताएँ पूरी करो और दुनिया में अपना प्रकाश फैलाओ।'

अब तक राधा और रेखा भी वहाँ आ चुकी थी किन्तु इस प्रकार के वार्तालाप को सुनकर वे अभिभूत हो उठी और मूक दर्शक ही बनी रह गई। दिन बीतते गये और शमादान भी विस्मृति के गर्त में समा गया। अब रेखा भी कुछ समझदार हो गई थी। अब वह और उसकी बुआ, अपने पिता के रोज ही देर से आने पर भी कुछ न कहतीं, उन्हें उसकी आदत सी पड़ गई थी।

बस्ती बनाई गई है, बच्चों के लिये जगह जगह पार्क बनवा रखे हैं, एक सिनेमाघर भी है किन्तु टिकिट दर बहुत ही कम है। मुझे तो वे अपनी कोठी में ही बुला रहे हैं। सच, यदि नौकरी की जाये तो ऐसे ही आदमी के पास रहकर ।'

तब से आठ ही दिन के अंदर ये सभी मिल की सीमा में आ गये। प्रकाशचंद्रजी का स्वभाव उन्हें बहुत ही अच्छा लगा। रेखा को तो इसमें और भी आनन्द इसलिये आया कि वहाँ उसे एक सखी जया भी मिल गई। जया प्रकाशजी की पुत्री थी और रेखा की हम उम्र भी। दोनों रात-दिन साथ रहतीं, खेलती-खाती और आनन्द मनाया करतीं।

एक दिन जया की वर्षगाँठ थी। सुबह से ही घर में धूम मची हुई थी। अनेक बच्चे आये हुए थे—सभी हँसमुख और प्रसन्नचित्त। उस दिन रेखा प्रकाशजी के पीछे ही पड़ गई कि चाचाजी, आज तो हम आपकी कहानी सुनके ही रहेंगे। आप रोज ही टाल देते हैं, आज तो सुनानी ही पड़ेगी।

'अच्छा बेटी ! सुन लेना। मैं ज़रा एक काम से बाहर हो आऊँ, फिर सुना दूँगा।' बच्चे उनके जाते ही फिर खेलकूद, हँसी-मज़ाक में लग गये। अचानक रेखा चीखकर भागी, "पिताजी ! रहमान ! उठो न बूआ, डर लग रहा है ! अरे चाचाजी ! भगाओ इस रहमान को, यह फिर कुछ चीज उठा ले जाएगा।"

और रहमान वेशधारी चाचा जोर से हँस पड़े। उनकी नकली डाढ़ी और फटे कमीज के अन्दर से प्रकाश चाचा निकल आये।

रेखा उनसे चिपट गई—'तो तुम ही रहमान थे प्रकाश चाचा !'

तभी राधा की शांत ध्वनि सुनाई दी—'तूने ठीक कहा था सुधीर ! वह शमादान घर के प्रकाश के लिये नहीं था। आज उसने संसार में अपना प्रकाश फैला दिया है।'

ब्रजेश बाबू पिछले दो वर्षों से रचना का सम्बन्ध करने के लिए दौड़ धूप कर रहे थे। लेकिन हर बार उन्हें निराश होकर ही लौटना पड़ता। अच्छे से अच्छा वर वह रचना के लिए चुनना चाहते थे।

एक रविवार की सन्ध्या को जब ब्रजेश बाबू निकट के शहर से लौटे तो उनके चेहरे पर ताजगी थी। परिवार के अन्य लोगों ने अनुमान लगाया इस बार वह सफल होकर लौटे हैं। सोफा पर बैठने के बाद ब्रजेश बाबू ने बताया एक अच्छे परिवार में वह रचना का सम्बन्ध निश्चित कर आये हैं। ब्रजेश बाबू ने अनुभव किया—अब घर में उदासी भरे बादल छँटने लगे हैं।

रचना की मां में अब परिवर्तन आ गया। रचना के भविष्य पर उगली सैकड़ों गालियों को उसके स्नेह भरे दुलार ने पोंछ डाला। रचना माँ के इस अचानक परिवर्तन पर आश्चर्य करती। रचना को इतने भर से सन्तोष मिलता कि घुटन भरे जीवन से अब उसको मुक्ति मिलने लगी है।

रचना की माँ अब उसकी तारीफों की झड़ी लगा देती। वह पड़ोस में कहती फिरती—लाखों में एक वर मिला है मेरी रचना को। प्रतिष्ठित परिवार। है लड़का आई. ए. एस. है, पिता राजस्थान में तहसीलदार हैं। रचना के पापा कल उसकी फोटो दिखा रहे थे। रूपरंग और डीलडौल भी ठीक उसी तरह है जैसा एक बड़े ऑफीसर का होना चाहिये। रचना उस परिवार में राज करेगी, घर में कई-कई नौकर होंगे। फिर उसे किस बात की कमी रहेगी?

और रचना ने जब अपने होने वाले जीवन साथी अनिल का चित्र देखा तो देखती रह गई। इतने सुन्दर जीवन साथी की कभी कल्पना भी उसने नहीं की थी। वह जब भी अनिल की तारीफ सुनती उसका यौवन में बौराया तन मादकता से भर उठता। मन का हर छोर कल्पना के धागों से अनदेखे सपने बुनने लगता। परिवार का कोई सदस्य जब अनिल के विषय में चर्चा छेड़ने लगता तो वह उठकर अपने कमरे में चली जाती और बिस्तर पर लेट कर अनिल की फोटो देखने लगती।

विवाह का एक महिना ही रह गया था। तभी से घर में तैयारियां आरम्भ हो गई। ब्रजेश बाबू ने अपनी हैसियत के अनुसार सामान खरीदना आरम्भ कर दिया। घर में नई-नई वस्तुओं का ढेर लग गया। विवाह के अवसर पर रचना को देने के लिए आवश्यकता की सभी वस्तुएँ उन्होंने खरीद

लीं। एक सुन्दर सा टेबल-फैन, दो कलाई घड़ियाँ, एक सोफासेट, अनेक कीमती कपड़े, ढेर सारे बर्तन व आधुनिक साज-सज्जा की अनेक वस्तुएँ उन्होंने एकत्रित करलीं।

अजेय बाबू दहेज प्रथा को ठीक न समझते थे। लेकिन फिर भी रचना की सुख-सुविधा और उसके लिए अच्छा वर प्राप्त करने के लिए उन्होंने यह सब किया। रचना उनकी इकलौती पुत्री जो थी उसको खाली हाथ कैसे घर से विदा करते? फिर समाज भी तो अंगुली उठाता, पता नहीं लोग क्या-क्या कहते।

फिर एक महीना आंख झपकते ही बीत गया। विवाह के दिन अजेय बाबू का छोटा बंगला बल्बों और ट्यूबलाइट की रोशनी से जगमगा उठा। बाहरी मैदान में कनातें खड़ी हो गईं। घर का वातावरण अतिथि और स्थानीय मित्रों की चहल-पहल हो हल्ले से भर गया।

बारात चढ़ी। रचना का मन नये-नये सपनों के बीच डूबने उतराने लगा। पिता के घर से दूर होने की सोचकर उसका हृदय बैठने लगता लेकिन अनिल के साथ नये परिवार में जाने का मोह उसमें उत्साह भर देता। नई साड़ी में लिपटी, सज-संवर कर बैठी रचना मनी कुछ सोचती रही।

तभी अचानक घर के वातावरण में एकाएक उदासी छा गई। रचना कुछ समझ न सकी। उसने देखा, निकट बैठी सहेलियों के भी मुँह लटक गये। रचना ने पूछने का बहुत प्रयत्न किया पर उन्होंने कुछ न बताया। वह किसी तरह उठकर उस कमरे में चली गयी जहाँ परिवार के लोग इकट्ठे हो रहे थे। उसने कमरे में देखा तो अपनी आंखों पर विश्वास न हुआ। अजेय बाबू फर्श पर बेहोश पड़े थे। रचना के मामा डॉक्टर मदन लाल उनका उपचार कर रहे थे। सभी के चेहरों पर उदासी पुत गई थी।

पाँच सौ रुपये पाने वाले साधारण से व्याख्याता ब्रजेश बाबू एकाएक किस तरह इतनी बड़ी व्यवस्था कर सकते थे। वर पक्ष की इस शर्त को सुनकर उनका हृदय दहल गया। आँखों के आगे अन्धेरा छा गया और उस अन्धेरे में अनेक चित्र मण्डराने लगे। यदि यह विवाह न हो सका तो लोग क्या कहेंगे, पीढ़ियों की बनी बनाई इज्जत धूल में मिल जायेगी। फिर रचना के लिए कहाँ वर ढूँढ़ा जा सकेगा? ब्रजेश बाबू यह सब न देख सके और मूर्छित हो धरती पर गिर पड़े।

रचना के हृदय पर पहाड़ सा टूट पड़ा। पूरी घटना जानकर वह क्रोध से फुफकार उठी। मन ही मन सोचने लगी—'मुझे ऐसा विवाह नहीं करना, जहाँ रस्म के नाम पर मजबूरियों का सौदा हो इस घिनौने जीवन से तो अविवाहित रहना ही ठीक है। लेकिन विवाह न हुआ तो परिवार की प्रतिष्ठा का क्या होगा? पापा किस तरह अपने दोस्तों को मुँह दिखायेंगे…? उसका मन अनेक उलझनों में फँस गया।

रचना सोचती रही और घर में उदासी का सन्नाटा बढ़ने लगा। तभी रचना कुछ निर्णय लेकर उठी। उसने अपने चाचा डॉक्टर सम्पतलाल से कहा—'अंकल आप तीन दिन के लिए अपनी कार दे दीजिये। मुझ पर विश्वास करिए, तीन दिन मे यह वापस लौट आयेगी।'

डॉक्टर सम्पतलाल रचना की बात मान गये। ब्रजेश बाबू के मन का बोझ हल्का न हुआ पर विवाह की धूमधाम फिर आरम्भ हो गयी।

रचना को सहेलियों ने सजाकर बैठाया। वर तथा उसके पिता ने विजय पर कुटिल प्रसन्नता अनुभव की। और रचना का विवाह हो गया। दूसरे दिन रचना के साथ डॉक्टर सम्पतलाल की नई-नवेली कार ले बारात विदा हो गयी।

बारात अपने घर पहुँची। रचना ने देखा, फाटक पर अनेक प्रतिष्ठित लोग खड़े हैं। जिनमें कुछ उच्च अधिकारी और बड़े नेता जान पड़ते हैं। कार की फाटक खुली, रचना की सास ने उसे प्यार किया, बलाएँ लीं और उसे कार से नीचे उतारना चाहा। लेकिन उससे पहले रचना ने कहा— 'जब तक मुझे 'मुँह दिखाई' के पच्चीस हजार रुपये नहीं मिलेंगे, मैं नहीं उतरूँगी।'

कार के निकट खड़े लोग स्तब्ध रह गये। रचना के ससुर गिड़गिड़ाने लगे—'बेटी रुपये कल ले लेना। इतने लोगों के सामने मेरा अपमान हो रहा है। इतने रुपयों का प्रबन्ध अभी कैसे करूँ ?'

रचना ने सिर झुका कर कहा—'जैसे मेरे पिताजी ने कार का प्रबन्ध किया था।'

ससुर के मुख पर हवाइयाँ उड़ने लगी थीं। वह अब होश में आये थे। उन्होंने ड्राइवर को सौ रुपये का नोट देकर कहा—'कार ले जाओ, हमें नहीं चाहिये।' ड्राइवर नोट लेकर कार में बैठ गया। रचना नीचे उतर आयी। उसने देखा—ससुर का सिर लज्जा से झुक गया है।

पाँच सौ रुपये पाने वाले साधारण से व्याख्याता ब्रजेश बाबू एकाएक किस तरह इतनी बड़ी व्यवस्था कर सकते थे। वर पक्ष की इस शर्त को सुनकर उनका हृदय दहल गया। आँखों के आगे अन्धेरा छा गया और उस अन्धेरे में अनेक चित्र मण्डराने लगे। यदि यह विवाह न हो सका तो लोग क्या कहेंगे, पीढ़ियों की बनी बनाई इज्जत धूल में मिल जायेगी। फिर रचना के लिए कहाँ वर ढूँढ़ा जा सकेगा ? ब्रजेश बाबू यह सब न देख सके और मूर्छित हो धरती पर गिर पड़े।

रचना के हृदय पर पहाड़ सा टूट पड़ा। पूरी घटना जानकर वह क्रोध से फुफकार उठी। मन ही मन सोचने लगी—'मुझे ऐसा विवाह नहीं करना, जहाँ रस्म के नाम पर मजबूरियों का सौदा हो इस घिनौने जीवन से तो अविवाहित रहना ही ठीक है। लेकिन विवाह न हुआ तो परिवार की प्रतिष्ठा का क्या होगा ? पापा किस तरह अपने दोस्तों को मुँह दिखयेंगे···? उसका मन अनेक उलझनों में फँस गया।

रचना सोचती रही और घर मे उदासी का सन्नाटा बढ़ने लगा। तभी रचना कुछ निर्णय लेकर उठी। उसने अपने चाचा डॉक्टर सम्पतलाल से कहा—'अंकल आप तीन दिन के लिए अपनी कार दे दीजिये। मुझ पर विश्वास करिए, तीन दिन मे यह वापस लौट आयेगी।'

डॉक्टर सम्पतलाल रचना की बात मान गये। ब्रजेश बाबू के मन का बोझ हल्का न हुआ पर विवाह की धूमधाम फिर आरम्भ हो गयी।

रचना को सहेलियों ने सजाकर बैठाया। वर तथा उसके पिता ने विजय पर कुटिल प्रसन्नता अनुभव की। और रचना का विवाह हो गया। दूसरे दिन रचना के साथ डॉक्टर सम्पतलाल की नई-नवेली कार ले बारात विदा हो गयी।

बारात अपने घर पहुँची। रचना ने देखा, फाटक पर अनेक प्रतिष्ठित लोग खड़े हैं। जिनमें कुछ उच्च अधिकारी और बड़े नेता जान पड़ते हैं। कार का फाटक खुली, रचना की सास ने उसे प्यार किया, बलाएँ लीं और उसे कार से नीचे उतारना चाहा। लेकिन उससे पहले रचना ने कहा—'जब तक मुझे 'मुँह दिखाई' के पच्चीस हजार रुपये नहीं मिलेंगे, मैं नहीं उतरूँगी।'

कार के निकट खड़े लोग स्तब्ध रह गये। रचना के ससुर गिड़गिड़ाने लगे—'बेटी रुपये कल ले लेना। इतने लोगों के सामने मेरा अपमान हो रहा है। इतने रुपयों का प्रबन्ध अभी कैसे करूँ ?'

रचना ने सिर झुका कर कहा—'जैसे मेरे पिताजी ने कार का प्रबन्ध किया था।'

ससुर के मुख पर हवाइयाँ उड़ने लगी थीं। वह अब होश में आये थे। उन्होंने ड्राइवर को सौ रुपये का नोट देकर कहा—'कार ले जाओ, हमें नहीं चाहिये।' ड्राइवर नोट लेकर कार में बैठ गया। रचना नीचे उतर आयी। उसने देखा—ससुर का सिर लज्जा से झुक गया है।

28

सोचने का दुःख

प्रेमपाल शर्मा

* * *

आप जैसे समाज सेवी भावना वाले, युग को बदलने वाले लोगों का आना निहायत जरूरी है, फिर आपकी प्रभावशाली आवाज, भाषा पर अधिकार, आप बहुत कुछ कर सकते हैं, आपको आना ही पड़ेगा।

आज वह मेरे प्रति बहुत श्रद्धालु होकर सम्मेलन की शोभा बढ़ाने का आग्रह कर रहे हैं। महानता और शराफत के ये पुतले हैं। उनका वेश भव्य है, घनी भौंहों के नीचे की मुस्कराहट और घनी हो गई है, उस मुस्कराहट से वे जनता को पाँच साला भुलावा प्रदान कर चुके हैं। वे मेरे गुणों की लम्बी सूची प्रस्तुत कर रहे हैं जिनसे मैं स्वयं अनभिज्ञ हूँ। निहायत आत्मीय वाणी में शीरीन घोलकर बोल रहे हैं। ऐसा लग रहा है कि उनकी नैया का तारनहार मैं ही हूँ।

मैं निहायत मामूली आदमी हूँ लेकिन सरकार मुझे राष्ट्र निर्माता कहती 'कर्णधार हो आज तुम्हीं भारत मां की नौका के', कहकर मस्का लगाती है।

भारत माँ की तो बात अलग यदि अपने पुत्र की माँ का निर्वाह कर दूँ तो बहुत बड़ी बात है।

एक खद्दर पोश अपने खोल से पाँच साल में एक बार बाहर निकलता है। माना हरिजन को वह काकाजी कहता है, वसुधैव कुटुम्बकम् मानकर ही व्यक्ति से रिश्ता कायम करता है, तीन इंच मुस्कराहट के साथ पेश आता है, ठीक आज की तरह। मैं चौंक कर सोचता हूँ कहीं चुनाव तो नहीं आ गये ? लेकिन इस भ्रम को दीवार पर लगा पोस्टर तोड़ देता है जिस पर समाजवाद शब्द अपनी सम्पूर्ण सुन्दरता के साथ चिपका रह गया है पिछले साल ही तो चुनाव सम्पन्न हो गये हैं। इस एक साल में गरीब हटते रहे हैं, गरीबी हटाते रहे हैं। आज भी पेड़ों की छाल खाकर बीमार पड़ते हुए, शीत में अकड़ कर मरते जा रहे हैं। कितना उदार तरीका है गरीबी हटाने का। मेरे सामने खड़े महानुभाव जिनके भारी भरकम हाथ में मेरा दुबला हाथ तड़प रहा है, पिछले साल इसी खूब-सूरत शब्द के सहारे अपनी कुर्सी को खड़ा कर रहे थे। आज वे मेरे सामने खड़े हैं उनकी कुर्सी विधान सभा में खड़ी है।

नौकरी और न जाने क्या-क्या यह करा सकता है ? घर में आई लक्ष्मी को ठोकर मारना बुद्धिमानी नहीं। यही अवसर है जब मैं इसकी चमचागिरी करके अपने बिगड़े काम बना सकता हूँ। लेकिन मद्यनिषेध पर जो भाषण है, वैसे दे सकता हूँ क्योंकि भाषण देना सबसे आसान काम है, लेकिन मेरे जैसा बद्परहेजी आदमी इस विषय पर बोले तो 'मुँह में निषेध बगल में बोतल होगी,' वैसे यह सही है कि मद्यपान के बाद लोग मद्यनिषेध पर जी भर कर बोलते हैं, साथ ही खण्ड काव्य की रचना भी कर सकते हैं।

—बोलूँगा, मैं मन ही निश्चय करता हूँ। चमचागीरी का यह स्वर्णिम अवसर मैं खोना नहीं चाहता।

—भूखों को

—रोटी दो

—हर जोर जुल्म की टक्कर में हड़ताल हमारा नारा है।

साथी रफीक का जुलूस आ रहा है। प्राइमरी स्कूल के लड़के जोर से नारे लगा रहे हैं। साथी रफीक चबूतरे पर खड़े होकर भाषण देने लगते हैं।

क्या आप चाहते हैं आपके बच्चे भूखे मरें, आप शीत में अकड़ कर मर जाय ? आपके बच्चों को पढ़ने के लिए किताबें न मिलें, आपके साथी बबूल की छाल खावे, आपके पशुओं की ठठरियों से ट्रक भर जाएँ, आज ये सब हम देख रहे हैं, गरीबी हटाओ का नारा खोखला है। समाजवाद ढोंग है। हम भूखों मरें तो तुम्हें हलवा खाने का क्या अधिकार है ? तुम्हारे वादे और आश्वासन कहां गये ? इन सब बातों का जवाब मांगना होगा——२२ तारीख को हमें अपनी जान हथेली पर रख तहसील पर प्रदर्शन करना है। जेल हो जायेगी हो जाय। इस तरह भूखे मरने से तो जेल ही बेहतर है। मुझे आशा है आप हमारा साथ देंगे। यह संगठन किसान मजदूरों का संगठन है। अंगुलियों में पड़ी हुई तीन सोने की अंगूठियों को चमकाते हुए गले में पड़ी सोने की चेन को सहलाते हुए 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा लगाते नीचे उतर जाते हैं। वे उतर कर मुझसे हाथ मिलाते हैं। सरकार के चमचे मत बनो विद्रोही कविताएँ लिखो। क्रान्ति के गीत लिखो।

—लेकिन साथी, मैं सरकार का अदना-सा नौकर हूँ। मुझे यह सब शोभा नहीं देता।

—नौकर? अपनी इच्छा से ही छोड़ दो, नौकरी। जैसे मैंने छोड़दी। कहते वे आगे ठेके की ओर रवाना हो जाते हैं।

—मैं मन ही मन उनकी बिना मांगे दी गई सम्मति पर झुंझलाता हूँ या अपनी विवशता पर! काश उनकी तरह मेरे पास भी सौ बीघे बढ़िया जमीन होती तो आज मैं ही उन्हें सम्मति दे सकता था। ट्रेड यूनियन के सदस्यों में फूट डालने का गुर मुझे आता तो मैं भी बिना एक पैसा खर्च किये शराब पी सकता था। भरा पेट ही क्रान्ति के गीत गाता है। समय ने शब्दों को नये अर्थ दे दिये। अभी तक लड़के नारे लगाते हैं, चिल्ला रहे हैं। मैं गली में खेलते नंगधड़ंग बचपन को देख रहा हूँ जिनके चेहरे सूखे हुए। शरीर अस्थिपंजर है मेरे देश का बचपन। आज मेरे देश को क्या हो गया है? नारे, भाषण, आश्वासन, वादों, हड़तालों, आन्दोलनों पर टिका मेरा रूप, कागज की नाव पर तिरता देश का अस्तित्व, अखबारों में कुछ अच्छा पढ़ने की खोज में थकी ये आँखें और दीवार पर चिपका मुँह चिढ़ाता समाजवाद, धूल के बवंडरों में फँसी मेरी जिन्दगी, क्यों सोचता हूँ मैं ये सब। जैसे सब जी रहे हैं बिना सोचे समझे मुझे भी अपने दिन काटने चाहिए। लेकिन मस्तिष्क में सैकड़ों प्रश्न घुमड़ रहे हैं। अखबार में छपे दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों की शून्य में उठी मुट्ठियाँ अनेक प्रश्नवाचक तैयार कर रही हैं। कोई अतीत दरवाजा नहीं दीखती। अँधेरा घिरता आ रहा है और मैं एक ही स्थान पर गोल-गोल चक्कर काट रहा हूँ। पूर्व में एक तारा धीरे-धीरे उगा है, किसी किसी ओर या तारे से. लेकिन मेरे कानों में अभी भी नारे और लाउडस्पीकर पर चिल्लाती आवाज गूँज रही है। क्या उन भाषणों से शान्ति हो जायेगी? क्या इनसे फसलें उग जायेंगी? मेरे खेत की सरसों फूल जायेगी या गोदियाँ भर जायेंगी? कुछ भी नहीं होगा सिवाय इसके कि एक के एक बाद दूसरी पीढ़ी इस देश में उत्पन्न होगी और नाम इस शब्द से ये देश पुकारा जाता रहा। धर्म क्षेत्र कुरुक्षेत्र में कृष्ण का कर्म का उपदेश प्रथम और अन्तिम उपदेश था। न जाने कौन गलत है? मैं, देश या व्यवस्था। मुझे करना चाहिये? चाय के सिप में अपनी देर के लिए भुला देना चाहिए इन सब बातों को।

✕ ✕ ✕ ✕ ✕

[illegible]

की कि परछाईं जनानी है या मरदानी। अब मरने के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं, परछाईं सिसकियों में ही बुदबुदाई। स्वर से पहचान गया हूँ। यह घीसू-कुमार का बी. ए. पास लड़का है। तीन साल से बेकार, बाप अफीमची है। उस नेता नाम के प्राणी ने इस निरीह युवक को बहुत झाँसे दिये हैं। नौकरी मिल भी जाती लेकिन अर्थ पर आकर मामला अटक गया।

क्यों रो रहा है कालीचरण? क्या हुआ रे? मैं बोल पड़ता हूँ वह हिचकियाँ भर-भर कर रोने लगता है। बताता क्यों नहीं क्यों रो रहा है? नौकरी नहीं मिली तो क्या, हाथ-पैर सलामत हैं, मजदूरी कर। मुझे अपनी आवाज और उपदेश खोखले लग रहे हैं। उसका रोना बन्द नहीं है। मैं अब सचमुच दुखी होने लग गया हूँ। ये बेकार जरूर है लेकिन इस तरह उसे दुखी और रोते हुए आज ही देखा है, जरूर कोई खास बात है। हो सकता है बाप ने लानत मलामत की हो, धिक्कारा हो, जवानी को कोसा हो, इसके अहम् को ठेस लगी हो, वैसे ये रोज ही होता है। मुझे मालूम है, इसका एक हाथ टूटा हुआ है। बाप ने एक दिन लाठी से मारा था। फिर आज यह क्यों रो रहा है? क्या बात है कालू? मैं स्नेह से उसे पूछता हूँ। रधिया का पता नहीं बाबूजी, आज शाम से गायब है। वही तो हमारे घर का एक सहारा थी, मेरी बेकारी में वही पूरे परिवार को रोटी खिला रही थी। सेठ के यहाँ मजदूरी करके वह हमारा पेट भरती थी। अब क्या होगा बाबूजी?

आँखों से देखा है लेकिन गवाही और पुलिस कचहरी के झंझट में नहीं फँसना चाहिये। यहाँ पर मैं अपने स्व को भारी पत्थर के नीचे दबा देता हूँ।

मद्यनिषेध के दिन सबसे अधिक शराब बिकी। कवि सम्मेलन में आये कवियों, वक्ताओं को देशी तथा साथी नेताओं को अंग्रेजी पिलाई गई। कुछ और भी हुआ जो लिखा नहीं जा सकता।

मैं फिर गोल-गोल चक्कर काट रहा हूँ। सोचना दुःखी करता है, अतः सोचना छोड़ देने का निश्चय कर चुका हूँ।

क्या ऐसा हो सकता है ?

भव्य दिखाई देता था। कर्नल और उनकी पत्नी मेरिया के दिन आराम से गुजर रहे थे। एक घोड़ा और एक कुत्ता इस बंगले में इन दोनों के अलावा और थे। सर्दी शुरू हो जाने पर प्रायः कर्नल जल्दी ही अपने बंगले में घुस कर अन्दर से बंद कर लिया करते थे। यों भी पहाड़ी स्थान, जंगली जानवरों का भय और एकाकी जीवन किसी प्रकार भी निरापद नहीं था।

एक रात कर्नल जैली और मेरिया सिगड़ी के पास बैठे ताप रहे थे कि सामने दूर-दूर तक फैले चाय बागानों से अजीब-अजीब सी आवाजें इन्हें सुनाई दीं। इन्हें ऐसा लगा कि वे किसी मोर्चे पर घायलों की चीत्कारें सुन रहे हों। इन आवाजों में और इन चीत्कारों में काफी समानता है। एक बार तो मेरिया भी इन आवाजों को सुन कर भयभीत हो उठी। कर्नल जैली इन अजीब आवाजों को सुनकर सहम गये यद्यपि वे रिटायर्ड कर्नल थे फिर भी उस भरी सर्दी में पसीने से बर बतर हो गये। शान्तिकाल में इस प्रकार की आवाजें आना असंभव था इसलिए उन्होंने इस बात को जानने की दृष्टि से अपने बंगले की खिड़कियां खोल कर बाहर की स्थिति का जायजा लेना चाहा। ज्योंही उन्होंने खिड़की खोली तेज ठंडी हवा का झोंका आया और हवा के झोंके के साथ ही आवाजें तेज होती सी सुनाई पड़ीं। सांय-सांय करती बाहर बर्फीली हवा चल रही थी इसलिये उन्होंने खिड़की को पुनः बंद कर दिया और सिगड़ी के पास आ बैठे। थोड़ी देर बाद मेरिया ने और उन्होंने सोने का उपक्रम किया। उनकी आंखों में नींद नहीं थी। यह रहस्य उनकी समझ में कुछ भी नहीं आया। मेरिया तो खर्राटे भरने लगी थी, वे उसी रहस्य को सुलझाने में व्यग्र थे। ज्योंही उनकी आंख लगने वाली थी कि उन्हें दूर घोड़ों की टापें सुनाई पड़ीं। वे ध्यान लगाकर सुन रहे थे। मेरिया के खर्राटों के बीच उन्हें घोड़ों की टापों की आवाज स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी। अस्तबल में बंधा उनका घोड़ा भी हिन-हिना उठा। उनकी हिम्मत नहीं हुई कि वे उठकर इस रहस्य का पता लगाएँ। वे चुपचाप अपने बिस्तर में जा दुबके। फिर रात भर क्या कुछ होता रहा इसका उन्हें भान ही न रहा।

सुबह जब वे उठे और मेरिया से उनकी आंखें चार हुईं तो उन्हें लगा कि रात की घटना से उनकी पत्नी सहमी हुई है। भय और विषाद उसके चेहरे से परिलक्षित हो रहा था। उन्होंने चाय-नाश्ता लिया और अपनी

डायरी निकाल कर उसमें घटना का सम्पूर्ण विवरण लिखा। फिर उन्होंने पत्नी से कुछ कहा। अपनी रायफल कंधे पर लटकाये हुये घूमने निकल पड़े। उन्होंने चाय बागानों का चक्कर लगाया। इधर-उधर चक्कर लगाने के बाद उन्हें इस बात का तनिक भी आभास नहीं हुआ कि रात को इधर घोड़े या अन्य कोई जानवर दौड़े होंगे। वे ज्यों-ज्यों इस रहस्य को सुलझाने का प्रयत्न करते त्यों-त्यों उलझते ही जाते।

घूमते-घूमते वे अपने मित्र मि. स्मिथ के क्वार्टर पर पहुँच गये। उनका वह मित्र तपाक से उनसे मिला। कुछ इधर-उधर की बातें होती रहीं इसके बाद कर्नल सा. ने रात जो घटना घटित हुई उसके बारे में बताया। सारे वर्णन को सुन कर मि. स्मिथ ठहाका मार कर हँसा और बोला "कर्नल सा. शायद आपको वहम हुआ है। यहाँ तो आज के पहले न तो इस प्रकार की कोई घटना हमने सुनी और न देखी। शायद आपको मोर्चे का ख्याल आ गया होगा या फिर आप किसी गलतफहमी में फंस गये होंगे। कर्नल ने कहा तुम मेरी बात का विश्वास नहीं करोगे। चल कर मेडम से पूछ लो वह तुम्हें बात बतायेगी। उनका वह मित्र खिलखिला कर हँस पड़ा फिर बड़ी दिल्लगी से बोला, कर्नल सा. ऐसी कोई बात नहीं है, आप मस्ती से रहिये, जंगली जानवरों का भय हो तो कोई चौकीदार नियुक्त कर देता हूँ, वह आपकी मदद करेगा। जब कर्नल सा. ने उसके सुझाव का समर्थन किया तो मि. स्मिथ ने तुरन्त एक गोरखा जवान की ड्यूटी उनके बंगले पर बोल दी। वे उसे लेकर बंगले पर चले आये।

इसीलिए वह भी अपने कमरे में आ गया। वह अब भी भयभीत था उसके लिये वह सारा दृश्य अजीब था।

सुबह जब उसने सारा किस्सा कर्नल सा. को सुनाया तो उन्हें अपनी बात की पुष्टि होती सी जान पड़ी। उन्हे लगा कि कहीं कुछ गड़बड़ जरूर है। फिर भी उसे हिम्मत बँधाते हुए बोले, तुम शायद जंगली जानवर को देख कर डर गये हो। ऐसी कोई बात नहीं है। हिम्मत रखो और मुस्तैदी से काम करो डरने की आवश्यकता नहीं। जब चौकीदार चला गया तो उन्होंने दराज खोलकर अपनी डायरी निकाली और जो कुछ चौकीदार ने बताया उसे लिखने लगे। इस घटना के बाद उन्होंने चौकीदार को एक सुविधा यह दी कि सर्दी के दिनों मे एक सप्ताह में एक बोतल अंग्रेजी शराब की वे उसे दिया करेंगे। इस सुविधा की सूचना जब चौकीदार को दी तो वह खुश हो गया। उन्होंने उसे यह भी कहा कि भविष्य में यदि कोई खतरा तुम्हें दिखाई दे तो उसकी सूचना तुरन्त मुझे दी जाय चौकीदार कर्नल सा. से सहानुभूति का वरदान पाकर खुश होता हुआ अपनी ड्यूटी पर चला गया। उसी मुस्तैदी से वह ड्यूटी देता रहा कुछ दिनों तक कोई घटना घटित नहीं हुई।

कई दिनों तक जब कर्नल सा. का मि. स्मिथ से मिलना न हुआ तो वह कर्नल सा. से मिलने के इरादे से उनके बंगले आ पहुँचे। उन्होंने उसकी आव भगत की। चाय नाश्ते के बाद वे शतरंज खेलने बैठ गये। शतरंज खेलते हुए स्मिथ ने पूछा "कर्नल सा. अब तो आपको किसी प्रकार की आवाजें सुनाई नहीं देती? तब उन्होंने बताया कि मुझे तो किसी प्रकार की आवाजें सुनाई नही दी पर चौकीदार को अवश्य कोई करिश्मा दिखाई दिया और वे आवाजें सुनाई दी। आप चाहें तो उसे बुलाकर पूछ सकते हैं। मि. स्मिथ ने चौकीदार को बुला कर पूछा तो चौकीदार ने जो कुछ देखा था वह ज्यों का त्यों सुना दिया। मि. स्मिथ को चाय बागान खरीदे पच्चीस वर्ष हो गये थे लेकिन इस प्रकार की कोई घटना न तो सुनी थी और न ही देखी थी। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, वे भी पशोपेश में पड़ गये।

कुछ दिन और बीते। इस बीच कोई घटना घटित नहीं हुई। एक दिन उन्हें तार मिला जिसमें रेजिमेंट का कोई अफसर उधर से गुजर रहा था। वह रेल्वे स्टेशन पर उनसे मिलना चाहता था, उनसे तार द्वारा

आग्रह किया था कि अमुक दिन वे अवश्य उनसे मुलाकात करें। गाड़ी रात आठ बजे उस रेल्वे स्टेशन से गुजरती थी। कर्नल का बंगला वहाँ से तीन साढ़े तीन मील दूर था। वे अपना घोड़ा लेकर स्टेशन पर जा पहुँचे। रेजीमेंट का अफसर तपाक से मिला, बड़ी आत्मीयता से मिला। उन्होंने बताया कि युद्ध के दौरान शत्रु पक्ष का जो जासूस तुम्हारे द्वारा मारा गया था, उसने मरने के बाद रेजिमेंट में तबाही मचा दी है, सैनिक उसके उत्पात से भयभीत हैं। उस जासूस से जो कागजात नक्शे आदि तुमने छीने थे वे भी नहीं मिल रहे हैं। क्या किया जाय ? कर्नल ने भी विगत दिनों में जो कुछ घटित हुआ था, वह सुनाया तो रेजिमेंट के उस अफसर को पक्का विश्वास हो गया कि इस उत्पात से कर्नल भी अछूता नहीं रहा। खूब घुल-मिलकर बातें हुईं। उन्होंने अफसर से कुछ दिन रुकने का आग्रह किया तो उन्होंने लौटते वक्त रुकने का वायदा किया और चला गया।

कर्नल स्टेशन से लौट रहा था। समय नौ साढ़े नौ बजे का था। तरह-तरह के विचार उनके दिमाग में चक्कर काट रहे थे। एकाएक घोड़ा ठिठक कर रुक गया, उन्होंने टार्च लगा कर देखा तो स्तब्ध रह गये। बीच सड़क में एक लाश पड़ी थी, गौर से देखने पर मालूम हुआ कि वह आसमानी वर्दी पहने शत्रुपक्ष का कोई सैनिक है। उसके शरीर से खून बह रहा था, जैसे उसका खून अभी अभी हुआ था। उसकी आँखें चमक रहीं थी। उन्होंने अपने दिमाग पर जोर डाला तो उन्हें लगा कि यह तो वही जासूस है जिसे उन्होंने जासूसी के आरोप में शूट डाला था। उन्हें आश्चर्य हुआ कि आखिर यह क्या माजरा है। वे अपने घोड़े को हांकते हुए आगे बढ़ने लगे कि उन्हें फिर वही विचित्र आवाजें सुनाई दीं। एक बार तो वे घोड़े पर बैठे हुए सहम गये। वे गुमसुम चले जा रहे थे। पीछे मुड़ कर उन्होंने देखा तो लगा कि वे चमकीली आँखें उनका पीछा कर रही हैं। इसकी उन्होंने परवाह नहीं की और वे बंगले की ओर बढ़ते ही गये। वे बंगले में पहुँचे तो चमकती आँखें बंगले के गेट के फासले पर रुक गईं। अब तक अजीब-अजीब आवाजें आना बन्द हो चुकी थीं।

वे गुमसुम से घोड़े को अस्तबल में छोड़ कर बंगले में घुस गये। [illegible] कब का सो चुकी थी। उन्होंने उसे जगा कर बातें कीं, थोड़ी [illegible] थी। खाना खाकर जब वे सोने लगे तो उन्हें वे [illegible] आवाजें फिर सुनाई

दीं। उन्होंने चौकीदार को आवाजें दीं। थोड़ी देर बाद हाँफता हुआ चौकीदार आया तो उसने बताया कि बंगले से करीब १००-१२५ गज के फासले पर वैसी ही चमकदार आँखें आज भी चमक रही हैं और वे आवाजें भी मैंने पहले सुनी थीं आज भी सुनाई दे रही हैं। वह जब बात कर रहा था तब काँप रहा था, कर्नल सा. भी भयभीत तो थे लेकिन उन्हें कोई आसन्न खतरा दिखाई नहीं दे रहा था इसलिए उन्होंने कहा तुम जाओ और देखो कोई गड़बड़ न हो इसका ध्यान रखना।

चौकीदार बेचारा चला गया और जाकर अपने क्वार्टर में सो गया। उसके जीवन में उसने इस तरह का करिश्मा पूर्व में कभी नहीं देखा था। सचमुच वह डर गया था।

कर्नल और उनकी पत्नी मेरिया अपने कमरे मे सोये हुए थे। चौकीदार अपने कमरे में लेटा था। उसकी आँखों में नींद नहीं थी। लगभग रात्रि के दो बजे कर्नल सा. के कमरे से खटाक की जोरदार आवाज हुई तो चौकीदार लपक कर ऊपर पहुँचा। वहाँ खिड़की में से जो दृश्य देखा तो वह भौंचक्का रह गया। कर्नल और मेरिया दोनों अपने पलंग पर खून से लथपथ पड़े हुए थे। जिस कुर्सी पर कर्नल सा. बैठकर लिखा करते थे उस पर एक आसमानी वर्दी पहने गोरा सैनिक कुछ लिख रहा था। चौकीदार की हिम्मत नहीं हुई कि वह कुछ कहे। वह अपने क्वार्टर में आकर पड़ रहा।

सुबह चौकीदार उठा और बेतहाशा भाग कर मि. स्मिथ के पास पहुँचा। मि. स्मिथ को उसने सारी बात सुना दी। इस घटना को सुन कर स्मिथ को एकाएक विश्वास नहीं हुआ। वे उसे लेकर कर्नल के बंगले की ओर रवाना हुए।

वहाँ जाकर देखा तो टेबुल पर कर्नल सा. की डायरी खुली पड़ी थी और वे तथा उनकी पत्नी बिस्तर पर खून मे लथपथ आँखें फाड़े पड़े हुए थे। मि. स्मिथ ने डायरी के खुले पृष्ठों पर दृष्टिपात किया तो सन्नाटे में/आ गये। किसी दूसरी राइटिंग में लिखा हुआ था।

"गत वर्ष इन्हीं दिनों में जासूसी के अपराध में कर्नल की गोली का शिकार हुआ था। उसी समय से मेरी अभिशप्तआत्मा बदला लेने का प्रयास करती रही।

कई दिनों तक मैं इनका पता लगाता रहा। अभी थोड़े दिनों पूर्व ही मैं इनको ढूँढ़ पाया और आज मैं बदला ले चुका हूँ तो कितनी प्रसन्नता अनुभव कर रहा हूँ। जो कागजात कर्नल ने मुझसे प्राप्त किये थे मैं उन्हें अपने साथ ले जा रहा हूँ। यह बदला था जो देश भक्ति के काम पर मरने के बाद ले चुका हूँ।" 'रस्किन'

इस डायरी के माध्यम से कर्नल और उनकी पत्नी की हत्या करने वाला रस्किन था, फिर भी रहस्य बना हुआ है कि विचित्र आवाजें, चमकदार आँखें और घोड़ों के टापों की आवाज क्यों और कैसे आती रहीं।

30

वादा

सुरेशकुमार 'सुमन'

* * *

लीला ने कॉलिज से आकर अपना कार्डिगन उतारा और किचन में घुस गयी—"मम्मी, कितनी देर है ? मुझे जोरों से भूख लग रही है ।"

रजनी ने फौरन लीला को खाना परोस दिया, परांठे और आलू ।

"मम्मी, अचार और चटनी ?"

"अचार और चटनी कहां से रोज-रोज लाकर तुझे दूं; तेरा एक साग से काम नहीं चलता क्या री ? तू तो बड़ी चटोरी है ।" कहते-कहते रजनी मुसकरा उठी—"किसी तरह गृहस्थी का रथ चल रहा है । बस, जो गुजर जाए, गनीमत है ।"

दिलीप के परिवार में लीला और उसकी मां रजनी सहित कुल सात प्राणी हैं । दिलीप डिप्टी डाइरेक्टर के दफ्तर में ऑफिस सुपरिन्टेंडेण्ट हैं । खिचड़ी बाल, आधे स्याह और आधे सफेद । आंखों पर ऐनक । बात करते हैं तो उनकी गरदन बेहद हिलती है ।

"बिटिया, आजकल तो तुम्हें बहुत मेहनत करनी पड़ रही है । परीक्षा अब पास ही है । इस साल तुम ग्रेजुएट हो जाओगी ।"

"हाँ, पापा, मेहनत तो कर रही हूँ। उम्मीद तो अच्छे नम्बर मिलने की है। नोट्स भी ढेर सारे लिए हैं।"

"बस, अगले साल तुम्हें बी० एड० करा देंगे।" —दिलीप ने लीला के सिर पर हाथ फेरा।

लीला भोजन करके ड्राइंग कक्ष में चली गयी।

× × × ×

"अजी, सुनते हो? लीला की पढ़ाई की फिक्र कर रहे हो, अच्छी बात है। पर कुछ बिटिया के पीले हाथ करने के बारे में भी विचार किया है? लड़की सयानी होती जा रही है। उसके लिए कोई लड़का तो तलाश करो।"

"ये आदर्श की बातें तो अब छोड़ो। आकाश में कल्पना की उड़ानें तो काफी भर लीं, अब कुछ धरती पर चलने-फिरने की बात करो। आकाश में यों कलाबाजी खाने से तो काम न चलेगा। आखिर, लौटकर आना तो फिर से धरती पर ही होगा।"

हो-हो करके दिलीप की हँसी उनकी घनी मूँछों में से बाहर फूट पड़ी, "आज तो बड़ी बढ़-चढ़ कर बातें कर रही हो रजनी। बड़े उपदेश झाड़ रही हो!"

"उपदेश! मेरी बात को आप महज उपदेश कहते हैं! इस भौतिक दुनिया में इन्सान का मूल्य अब रह ही क्या गया है? चाँदी के चन्द सिक्के और नोटों पर आज का इन्सान आसानी से बिक जाता है।"

"मैं अभी इस बारे में कुछ नहीं कहना चाहता। समय ही इस बात का जवाब देगा कि दिलीप सही था या नहीं!"

दिलीप अपने शयन-कक्ष में विश्राम करने चले गये।

× × × ×

"कांग्रेचुलेशन्स, लीला!" लीला की सहेली अरुणा लीला को बी० ए० में फर्स्ट क्लास लाने के लिए बधाई दे रही है। दोनों ही सहपाठिनें हैं। अरुणा ने भी सेकिण्ड डिविजन में बी० ए० की यह दुर्गम घाटी तय कर ली थी।

"आओ, अरुणा, कांग्रेचुलेशन्स तुम्हें भी परीक्षा में सफलता के लिए। अब आगे तुम्हारा क्या विचार है?"

"एम० ए० की क्लासेज़ ज्वाइन करने का, हिन्दी में!"

"अरुणा, ऐसा, तब तो बस, अब हम-तुम बिछुड़ जाएँगे। पापा तो मुझे अब बी. एड. में भेजना चाहते हैं।"

"तुम्हारा इरादा क्या अध्यापिका बनने का है?"

"मैं इस बारे में क्या कहूँ अरुणा? पापा की जैसी इच्छा होगी, करूँगी!"

"तुम ठीक कहती हो लीला! पापा जो भी करेंगे, तुम्हारे हित में ही करेंगे। अब तुम अलग पढ़ोगी, मैं अलग पढ़ूँगी। फिर भी संध्याएँ तो हम दोनों की मिलाएँगी ही। छुट्टी का दिन तो अपना ही है। बहुत समय तक

विवाह के उल्लास में जैसे सजीव हो उठा है। लीला के उबटन लगाया जा रहा है। अरुणा उसके पास बैठी-बैठी हँसी ठिठोली कर रही है। घर के अन्दर के महल में औरतें गीत गा रही हैं। दिलीप विवाह के काम-धंधे में इसी तरह मशगूल हैं। कड़ाह चढ़ रहे हैं। तीन हलवाई भट्टी पर लगे हुए हैं। दिलीप को न दिन का पता है, न रात का।

"बारात आज किस समय पहुँच जाएगी?"—रजनी ने दिलीप को पुछवाया।

"शाम को ६ बजे तक। दो बसें आएँगी। जो भी और आवश्यक तैयारी करनी हो, करवा ली जाए।"—दिलीप ने कहलवा दिया और फिर बारात के स्वागतादि कार्यक्रम की तैयारी में लग गये। उधर, रजनी जनवासे की ओर चल दी।

"अरे, मनोज बाबू, भट्टी का काम बिल्कुल ठीक चल रहा है न? पास की धर्मशाला के दोनों बड़े कमरों को खाली करवा के उनमें झाड़ू-बुहारी लगवा दी है? दीवारों पर के जाले तो उतरवा दिये हैं? ऐसा न हो कि बाराती नाहक हमारा मजाक उड़ाएँ और सभी कुछ नुक्ताचीनी करें।"

"नहीं दिलीप बाबू, आप निश्चिन्त रहें। सब ठीक हो जाएगा। मैं सतर्क हूँ।"—मनोज का उत्तर था। मनोज दिलीप के ऑफिस में ही क्लर्क था, दिलीप का अत्यन्त विश्वासपात्र।

शाम का सूरज ढलने की तैयारी कर रहा था। बारात आ पहुँची थी। बारातियों की खातिरदारी बड़ी मुस्तैदी से हो रही थी।

रात को ग्यारह बजे तक भोजन चलता रहा। साढ़े ग्यारह पर फेरों का मुहूर्त था।

"दिलीप बाबू, वह कार मुझे अभी तक नहीं दिखाई दी। आपने वादा किया था न?"—प्राणवल्लभ ने कहा।

"हाँ, कार तो कभी की खरीदी जा चुकी है। एकदम अत्याधुनिक मॉडल की है। कल सवेरे वह पहुँच रही है।"—दिलीप ने दिलासा दी।

फेरे फिर गये। सवेरे बारात की विदा होनी थी। लीला सज-धज कर बस की ओर अपनी ससुराल के लिए बढ़ रही थी। [illegible] भी विदा होने के लिए तैयार था। दिलीप और रजनी अपनी बेटी को छोड़ने आ रहे थे। प्राणवल्लभ के तेवर बदले हुए थे। दिलीप उनके उस [illegible] का कारण ताड़ गये थे।

31

स्वाभिमानिनी

बसंतीलाल महात्मा

* * *

भारत में राजस्थान सदैव अपनी वीरता एवं बलिदान के लिए प्रसिद्ध रहा है। उस राजस्थान में भी विशेषतः मेवाड़ के शौर्य एवं त्याग तो निःसन्देह रूप से अद्वितीय रहे हैं। यहां सदैव जन्मोत्सव मनाने की अपेक्षा मरणोत्सव मनाये गये। ऐसे ही मरणोत्सव की अभिव्यक्ति राजस्थानी कवि श्री नाथूदान महियारिया ने निम्न दोहों में बड़ी सजीवता एवं ओजस्विता से की है :—

बेटा, दूध उजालियो, तूं कट पड़ियो जुद्ध ।
नीर न आवै मो नयण, पण थण आवै दूध ।। १।।

पर जाती हैं और पेड़ों पर डाले हुए झूलों में झूलती हैं। साथ ही गाती हैं—
'आई-आई सावणिया री तीज, गौरी तो निसरी रमवा ने माँ का राज।'
इसी श्रावण मास की शुक्ल पक्ष की तृतीया से त्यौहारों का प्रारम्भ होता है एवं इसी मास में भाई बहिनों का प्रसिद्ध त्यौहार रक्षा-बन्धन भी आता है। प्रत्येक भाई अपनी बहिनों को रक्षा-बन्धन के शुभ अवसर पर अपने यहाँ (मायके में) अवश्य लाता है। सम्वत् १६३० में ऐसी श्रावण शुक्ला तृतीया आई थी। उस दिन कोटा के राजमहलों में विशेष रूप से हलचल थी क्योंकि कोटा महाराजा की दोनों विवाहित राजकुमारियाँ अपने मायके आयी हुई थीं। बाहर पुरुषों के दरबार लगने की तैयारियाँ हो रही थीं तो अंतःपुर में स्त्रियों के दरबार लगने की विशेष रूप से तैयारियाँ हो रही थीं। उसमें एक ओर से जयपुर की महारानी सम्मिलित होने वाली थीं तो दूसरी ओर से मेवाड़ की महाराणी शामिल हो रही थीं। ये दोनों सगी बहिनें थीं। मेवाड़ की महाराणी बड़ी बहिन थी और जयपुर की महारानी छोटी बहिन। कई वर्षों बाद ये दोनों बहिनें इस श्रावण मास में अपने मायके आई हुई थीं। आज जयपुर की महारानी (छोटी बहिन) विशेष रूप से प्रसन्न थी कि उसे अपनी बड़ी बहिन के समक्ष अपने वैभव का प्रदर्शन करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ था। प्रातःकाल से ही वह अपनी साज-सज्जा एवं शृंगार करने में जुट गई। विविध प्रकार के हीरे, जवाहरात एवं मोतियों के गहनों की सफाई की गई। मखमल की विशेष पोशाक तैयार करवाई गई। साथ ही ढाके की मलमल की कुसुमल रंग की साड़ी पर सलमे-सितारों के साथ सुनहरी जरी का काम बड़े सुन्दर ढंग से करवाया गया था। संध्या के होते ही जयपुर की महारानी ने अपना शृंगार बड़ी सावधानी पूर्वक किया और ठीक समय पर अन्तःपुर के दरबार में जा पहुँची। दरबार में पहुँचने पर सब उपस्थित सरदारों एवं उमरावों की पत्नियों ने खड़ी होकर उन्हें ताजीम दी। वे यथा-स्थान विराजमान हो गईं। उनके हीरे जवाहरात के आभूषणों से दरबार में नयी चकाचौंध जगमगाहट करने लगी और तेल के दीपकों का प्रकाश उनमें

लुप्त होगया। दरबार में विराजते ही उन्होंने पूछा, "क्या जीजीबाई (मेवाड़ की महारानी) अब तक नहीं पधारी ?" इस पर उन्हें सूचित किया गया कि अभी तो शृंगार धारण हो रहा है। थोड़ी देर में पधारने ही वाली हैं। पर जयपुर की महारानी को धैर्य कहां ? वह तो अपना वैभव-प्रदर्शन करने को उतावली हो रही थी। अत: उन्होंने एक दासी भेजकर जीजीबाई को कहलवाया कि वे दरबार मे शीघ्र ही पधारें। दासी ने आकर पुन: सूचना दी कि थोड़ा सा शृंगार और शेष रह गया है। बस पधारने ही वाली हैं। थोड़ी देर बाद जीजीबाई अपने थोड़े से सोने के आभूषण एवं सादी वेशभूषा मे दरबार में पधारीं। दरबार मे उपस्थित समस्त स्त्रियों ने अपने-अपने स्थान पर खड़ी होकर उन्हे ताजीम दीं। वे भी यथा स्थान विराजमान हो गईं। जीजीबाई के विराजते ही छोटी बहिन ने व्यंग्य किया, "जीजीबाई ! आपने इतने से साधारण शृंगार करने में इतनी देर लगादी। कृपया, मेरी ओर देखिये। मैं इतने हीरे, जवाहरात एवं मोतियों के गहने धारण कर आपसे भी जल्दी दरबार में आगई।" इस व्यंग्य को सुन-कर जीजीबाई ने बड़े धैर्य एवं शांति से उत्तर दिया, "बहिन ! स्त्री का सबसे बड़ा आभूषण उसका सतीत्व है। इज्जत के तो ये दो चार गहने ही श्रेष्ठ हैं। यदि मेरा डोला भी अकबर के महलों में जाता मैं आपसे भी अधिक हीरे, जवाहरात एवं मोतियों के गहनों से लद जाती।" यह कटु व्यंग्य सुनकर जयपुर की महारानी जलभुन कर खाक हो गई और क्रोध में आकर बोली, "यदि आपका भी डोला बड़ी तीज (भाद्र कृष्णा तृतीया) तक अकबर के महलों में न भिजवाया तो मेरा नाम जयपुर की महारानी नहीं।" यह कहते हुए वे उठ खड़ी हुई और भन्नाकर चली गई। दोनों बहिनों की इस बातचीत से रंग में भंग हो गया। दरबार में एक भययुक्त सन्नाटा छा गया। सभी उपस्थित सामंतों एवं उमरावों की पत्नियां भविष्य की आपत्ति से चिंता में पड़ गईं। धीरे-धीरे दरबार हॉल स्तब्ध एवं शांत हो गया।

× × × ×

जयपुर की महारानी अपने शयन कक्ष में पहुँचकर पलंग पर लेट गईं और मन में सोचने लगीं—

कहाँ तो मैं अपने वैभव-प्रदर्शन की अभिलाषा लेकर गई थी ? कितने श्रम से साज-शृंगार किया था ? पोशाकें बनवाने में कितना रुपया स्वाहा किया था ? पर जीजीबाई के एक ही व्यंग्य में सब धराशायी हो गये। अब मैं भी देखती हूं कि जिस सतीत्व का जीजीबाई को इतना गर्व है, उस सतीत्व को नष्ट करवाकर ही रहूँगी। जीजीबाई अपने को समझती क्या हैं ? हैं तो एक छोटे से मेवाड़ राज्य की महाराणी ही।

यही सोचते-सोचते उन्होंने उसी समय अपने पतिदेव जयपुर के महाराजा को एक पत्र लिखा जिसमें सारी घटना का खूब नमक मिर्च लगाकर वर्णन किया और अंत में अपनी जीजीबाई के सतीत्व को दी गई चुनौती की तिथि भाद्रपद कृष्णा तृतीया की याद दिलाते हुए निवेदन किया- "हे नाथ ! चाहे सूर्य पूर्व के बदले पश्चिम में उदय होने लगे, सागर अपनी मर्यादा छोड़ दे, हिमालय में ज्वालामुखी का विस्फोट हो परन्तु मेवाड़ की महारानी का डोला एकबार अवश्य ही अकबर के महलों में भेजना होगा तभी मेरे अशांत चित्त को शांति प्राप्त होगी।"

पत्र को लिखकर अपने तकिये के नीचे रख दिया और शांति से सो गयीं। प्रात:काल उठते ही सबसे पहला काम उस पत्र को एक तेज सांडनी सवार द्वारा जयपुर पहुँचाने का किया।

× × × ×

उधर मेवाड़ की महाराणी भी अपने शयन-कक्ष में पहुँची और शांति पूर्वक विचार करने लगीं—

'छोटे मुँह बड़ी बात' करना इसे ही कहते हैं। चली थीं अपने वैभव का प्रदर्शन करने। क्या वास्तव में जीवन में वैभव का महत्व इतना बढ़ गया

है कि हम अपने आदर्शों को भी तिलांजलि दे दें ? हो सकता है कुछ व्यक्ति ऐसा भले ही करें। पर मैं मेवाड़ की महारानी होने के नाते अपने सतीत्व की रक्षा अवश्य करूँगी। अपनी छोटी बहिन को दिखा दूँगी कि स्त्री का सबसे बड़ा आभूषण सतीत्व ही है और मैं उसकी रक्षा अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी कर सकती हूँ।"

इसी विचारधारा में उन्होंने भी अपने पतिदेव महाराणा को इस घटना की सूचना देना आवश्यक समझा। उन्होंने केवल संक्षेप में लिखा—

"हे प्राणनाथ ! यदि आप भाद्रपद कृष्णा तृतीया (बड़ी तीज) को आधी रात तक कोटा नहीं पधारेंगे तो रावरी दासी चम्बल में कूदकर आत्म-हत्या कर लेगी।"

फिर वे आत्म-हत्या करने के पाप-पुण्य पर विचार करने लगीं तो उन्हें सतीत्व की रक्षा के निमित्त जौहर की ज्वाला में जीते-जी मरने वाली मेवाड़ी क्षत्राणियों के दृश्य अपने स्मृति-पटल पर याद हो आये। अतः उन्होंने भी अपने सतीत्व की रक्षा के लिये आत्म-हत्या करने का निश्चय कर लिया, यदि ऐसी परिस्थिति आई तो।

फिर वे भी निश्चिन्त होकर सो गईं। प्रातःकाल वह पत्र एक तेज साँडनी सवार के साथ उदयपुर भेज दिया गया। महाराणा ने उस पत्र को पढ़ा और निश्चिन्त भाव से अपनी ढाल में रख दिया।

× × × ×

भाद्रपद कृष्णा द्वितीया का सुहावना प्रातःकाल था। रिमझिम-रिमझिम करके वर्षा हो रही थी। ऐसे सुहावने समय में पिछोले की पाल पर कुछ स्त्रियाँ गीत गा रही थीं। इन गीतों की स्वर लहरियाँ महाराणा के कानों में पड़ी, जो उस समय प्रातःकालीन दतौन कर रहे थे। उन्होंने समीप खड़े एक दास से पूछा, "क्यों रे ! ये औरतें आज गीत क्यों गा रही हैं ?" उस दास ने उत्तर दिया, "अन्नदाता ! कल बड़ी तीज है। अतः आज ये औरतें 'दांतन हेले' के गीत गा रही हैं।" यह सुनते ही महाराणा को आश्चर्य हुआ और मुँह से अनायास निकल गया—"हैं ! कल ही बड़ी तीज है। जा दौड़कर मेरी ढाल ले आ।" दास दौड़कर गया ढाल ले आया। महाराणा ने

ढाल से निकाल कर पत्र पढ़ा और गहरी चिंता में डूब गये कि महाराणी ने चम्बल में कूदकर आत्म-हत्या करने का क्यों लिखा ? अब क्या करना चाहिये ? अंत में उन्होंने अकेले ही कोटा जाने का निर्णय किया और उस दास को अपना घोड़ा तैयार करने की आज्ञा दी।

वर्षा रुकने का नाम नहीं ले रही थी। रह-रह कर जोर से बिजलियाँ चमक उठती थीं और बादल गर्जना कर उठते थे। ऐसे समय में कोई भी अपने घर से बाहर निकलने का साहस नहीं कर पा रहा था। परन्तु ऐसे ही भीषण समय में एक अश्वारोही कम्बल की घूघी ओढ़े कोटा की ओर बढ़ रहा था। उसे चलते-चलते आज दूसरा दिन था। आज भी वर्षा निरन्तर हो रही थी। इस प्रकार दो दिन से बराबर वर्षा में चलते रहने से अश्वारोही मूर्च्छित हो गया जिसके कारण उसके हाथ से घोडे की लगाम छूट पड़ी। ज्योंही अश्वारोही के हाथ से घोड़े की लगाम छूटी त्योंही स्वामि-भक्त घोड़े ने समझ लिया कि अश्वारोही अपनी चेतना खो चुका है। अतः वह सभलकर अब धीरे-धीरे चलने लगा। इस समय बड़ी तीज की संध्या थी। वर्षा के कारण अंधकार और भी घना हो गया था। उस चतुर घोड़े ने किसी वस्ती की तलाश में अपनी दृष्टि दौड़ानी शुरु की। थोड़ी देर में उसे एक टिमटिमाता दीपक दूरी पर दिखाई दिया। वह उसी दीपक की दिशा मे अत्यन्त सावधानी-पूर्वक धीरे-धीरे चल दिया। अंत में वह एक छोटे से गाँव की वस्ती में पहुँच गया। कोई भी मनुष्य अपने घरों से बाहर नहीं था। अतः वह वस्ती के चौराहे पर पहुँच कर बड़े जोर से हिनहिनाया। उसकी हिनहिनाहट से सारे गाँव के घोड़े एक साथ हिनहिना उठे। उस गाँव के पटेल ने कभी घोड़े की ऐसी जोर की हिनहिनाहट नहीं सुनी थी। अतः वह कौतूहलवश बरसते पानी में अपने घर से बाहर निकला तो क्या देखता है कि मेवाड़ के महाराणा घोड़े पर लुढ़के पड़े हैं। उसने शीघ्रता से अपने भाइयों को बुलाया और घोड़े पर से महाराणा को उतार कर अपने घर मे ले गया। घोड़े को भी घर में ले लिया गया। उस घोड़े पर लगी कम्बल की घूँघी को

अच्छी तरह सुखाने और घोड़े की अच्छी मालिश करने का आदेश अपने नौकर को देकर वह और उसके भाई महाराणा की सेवा में लग गये। महाराणा की कम्बल की घूघी को अच्छी तरह निचोड़ कर सूखने को डाल दी गई। उनके हाथों, पैरों और छाती पर सरसों के गरम तेल का मालिश किया गया और उन्हें भली प्रकार तपाया गया। फिर उन पर बहुत सारे बिछौने उनके शरीर मे गर्मी प्रवेश कराने के लिये डाल दिये गये। इस प्रकार लगभग डेढ़ घंटे बाद महाराणा की मूर्च्छा टूटी और उन्होंने पूछा, "मैं कहाँ हूँ ?" पटेल ने उत्तर दिया, "अन्नदाता ! आप मेवाड़ की सीमा के अंतिम छोर के गाँव मे हैं।" तब महाराणा ने पूछा कि कोटा यहां से कितनी दूर है, कितनी रात गई है, और घोड़े का क्या हाल है ?" उत्तर में निवेदन किया गया, "अन्नदाता ! कोटा यहाँ से केवल चार कोस दूर है, एक प्रहर रात बीती है और घोड़े की भली प्रकार मालिश कर दाना-चारा खिला-पिला दिया गया है।" ये सब बातें सुनकर महाराणा को अत्यंत प्रसन्नता हुई कि कोटा आधी रात के पूर्व ही पहुँच जाऊँगा। अतः उन्होंने वापस घोड़े को तैयार करने की आज्ञा दी। पटेल के बहुत आग्रह करने पर उन्होंने केवल गरम दूध का एक कटोरा पिया। इस प्रकार पुनः अपनी यात्रा के लिये प्रस्तुत हो गये। आधे घंटे चलने के बाद वे चम्बल के किनारे पहुंचे तो देखते क्या हैं कि चम्बल मे भयंकर बाढ़ आई हुई थी। उस बाढ़ को देखकर घोड़ा एक बार पुनः जोर से हिनहिना उठा। उसकी हिनहिनाहट सुनकर महाराणा ने स्वतः कहा, "हां घोड़े, चम्बल पार करना मृत्यु को गले लगाना है, पर महारानी को बचाने के लिये तो आज मृत्यु को भी हँसते हुए गले लगाना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त कहा भी है कि जाको मन में अटक है, सोई अटक रहा।" यह विचार कर और अपने प्रिय इष्टदेव एकलिंग जी का स्मरण कर उन्होंने अपने प्रिय घोड़े को एड़ लगाई। चतुर घोड़ा भी अपने स्वामी के संकेत को समझकर चम्बल में कूद पड़ा।

× × × ×

उधर कोटा के एक मैदान में जयपुर के महाराजा के चुने हुए सात सौ सवारों का शिविर लगा हुआ था। जयपुर के महाराजा भाद्रपद कृष्णा तीज को प्रात.काल ही मेवाड़ की महाराणी को कैद कर उसके डोले को अकबर के महलों में पहुँचाने के लिये पहुँच गये थे। कल प्रातःकाल होते ही वे महाराणी को कैद कर लेंगे। अतः वे निश्चिन्त होकर आज रात्रि में विश्राम कर रहे थे। आज पुनः छोटी वहिन (जयपुर की महारानी) अत्यत प्रसन्न थी कि उसके पतिदेव उसकी प्रार्थना पर जीजीबाई (मेवाड़ की महाराणी) के गर्व को मिट्टी में मिलाने आगये थे।

इधर मेवाड़ की महाराणी अपनी अन्तरंग दासी से वार्तालाप कर रही थी। —"प्रिय सखी, यदि महाराणा न पधारेंगे तो क्या होगा ? एक प्रहर रात से भी अधिक बीत चुकी है पर महाराणा अब तक न तो पधारे हैं और न ही कोई सूचना भिजवाई है।" यह सुनकर दासी ने निवेदन किया, "महाराणी जी ! आपके सतीत्व की रक्षा के लिये महाराणा जी अभी पधारने ही वाले हैं। आप धैर्य धारण करावें। आइये, हम ऊपर चलकर देखें कि महाराणा पधार रहे हैं या नहीं।" महाराणी को दासी का यह सुभाव पसंद आ गया और वे दोनों दीपक लेकर महल की छत पर जा पहुँचीं। चारों ओर घनघोर अंधकार था। चम्बल में भयंकर बाढ़ आई हुई थी। बाढ़ को देखकर तो उन्हें और भी निराशा हुई कि इसे कौन पार कर सकेगा ? परन्तु घनघोर निराशा में ही आशा की किरण उसी प्रकार फूटती है जैसे घनघोर बादलों में बिजली की चमक। थोड़ी देर में उन्हें चम्बल की बाढ़ में एक अश्वारोही जैसा कुछ तैरता हुआ महलों की ओर आता हुआ दिखाई दिया। महाराणी समझ गई कि यह अश्वारोही और कोई नहीं हो सकता सिवाय महाराणा के। अतः महाराणी की उत्साह से बाछें खिल गईं। उसने दासी से कहा, "चल, अब शीघ्रता से नीचे चलें और

अपने आराध्यदेव के सुझावानुसार महाराणी भी दो नंगी तलवारें हाथ में लेकर महाराणा के पीछे घोड़े पर सवार हो गयी। उस समय पर्दे का रिवाज था। अतः महाराणा ने महाराणी को कम्बल की घूघी से ढक लिया और घूघी में महाराणी के दोनों हाथ बाहर निकालने के लिये दोनों ओर दो छेद कर दिये गये। इस प्रकार चतुर्भुज का साक्षात् अवतार धारण कर महाराणा जयपुर की सेना में जा पहुँचे, जो अभीतक अस्त-व्यस्त पड़ी थी। जाते ही उन्होंने जयपुर के महाराजा को ललकारा और कहा, "मैं स्वयं डोला लेकर हाजिर हो गया हूँ। कृपया उसे अकबर के पास भेजने का प्रबंध कीजियेगा।" महाराणा की ललकार सुनते ही पहले तो उन्हें विश्वास नहीं हुआ कि महाराणा आ पहुँचे हैं क्योंकि उनके जासूसों ने सूचना दी थी कि रात के ग्यारह बजे तक महाराणा नहीं पहुँच पाये हैं और उधर मेवाड़ के मार्ग में चम्बल में भयंकर बाढ़ आई हुई है। अतः महाराणा का आना असंभव है। परन्तु जब उस असंभव को प्रातःकाल इतनी जल्दी संभव होते हुए देखा तो वे हक्के-बक्के रह गये। वे कुछ भी न कर सके और महाराणा महाराणी को सकुशल अपने राज्य में ले आये।

× × × ×

पाठको ! ये महाराणा और कोई नहीं स्वयं महाराणा प्रताप थे और घोड़ा उनका प्रसिद्ध चेतक था। जयपुर के महाराजा मानसिंह थे जिनकी बुआ अकबर को ब्याही गई थीं। इस प्रकार महाराणा प्रताप और जयपुर के महाराजा मानसिंह सगे साढू थे। दोनों की, सगी बहिनें होते हुए भी अपने-अपने वातावरण के अनुकूल विचार-धाराएँ थीं। ऐसी ही स्वाभिमानिनी महाराणी ने महाराणा प्रताप को स्वतंत्रता के अमर पुजारी बने रहने में पर्याप्त प्रेरणा दी।